विचार

आस्तिक विचार

लेखक—
श्री पंडित देवप्रकाश जी
भूतपूर्व आचार्य्य दयानन्द अरबी संस्कृत महाविद्यालय
अमृतसर

प्रकाशक—
भक्त मुकन्दलाल धर्मार्थ ट्रस्ट
चौक पासियां, अमृतसर

प्रथमावृति 1100 | मई सन् १९५० | मूल्य १।) सजिल्द १॥)

आवश्यक सूचना

मैं जनता को यह बतलाना आवश्यक समझता हूं कि इस ट्रस्ट की ओर से कई एक धार्मिक, सोशल तथा राजनैतिक पुस्तकें हिन्दी, उर्दू और गुरुमखी में छप रही हैं। यह ट्रस्ट स्वर्गीय श्रीमान् भक्त मुकन्दलाल जी महाराज की स्मृति में स्थापित किया गया है। इस ट्रस्ट की ओर से निकलने वाली पुस्तकों की कीमत अन्य पुस्तकों से कम ही रखी गई है और इनके लिखाने में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है। कि इन पुस्तकों का एक २ अक्षर देश तथा जाति के लिये लाभदायक हो। इसी लिए दूसरी पुस्तकों से इनको बहुत अधिक लिखाई देनी पड़ती है। इन सब बातों के होते हुए भी जो आय इन पुस्तकों की बिक्री से होती है। उसे अबला, यतीम, वृध, रोगी एवं बेरोज़गारों की सहायता और शिक्षा के कार्य्यों में खर्च किया जाता है। इसलिये आपको चाहिये कि आप इन पुस्तकों को अवश्य खरीदें इससे जहां आप अपने पूर्वजों के इतिहास तथा अपने कर्तव्य को समझेंगे वहां आपके द्वारा गरीबों की भी सहायता होगी।

निवेदकः—

मंत्री—भक्त मुकन्दलाल धर्मार्थ ट्रस्ट,

चौक पासियां, अमृतसर

भक्त दुर्गादास मालिक "दुर्गादास प्रेस" अमृतसर द्वारा मुद्रित

दो शब्द

मायावाद के वर्त्तमान युग ने अपनी चका चौंद करने वाली तेज चमक से मानव की अन्तरात्मा पर अज्ञान का कृष्ण पट डाल दिया है। मानव की अन्तर-दृष्टि मायावाद के अतिरिक्त कुछ देखना भी पसन्द नहीं करती।

उसके विचार, आचार, जीवन, सभी माया के आकर्षक रंग में रंग जारहे हैं। ईश्वर, धर्म, सदाचार, शिष्टाचार के प्रति घोर विद्रोह करने का मानों उसने बीड़ा उठा लिया है। फिर अनेक सामयिक पार्थिव बुद्धि जनित मत संचालकों के मिथ्या मान्य सिद्धान्तों एवं क्षणिक तरंगों ने सत्य की ओर से मानव के हृदय में ईश्वर एवं धर्म के बारे में अनेक घृणास्पद धारणायें एवं संकल्प भर दिए हैं।

मानव बुद्धि की इस डावांडोल स्थिति को देखकर समय २ पर जो विचार हृदय में आते रहे प्रस्तुत पुस्तक उनका संग्रह स्वरूप है। यद्यपि इस विषय पर पूर्व भी कुछ विद्वान लेखकों ने लेखनी उठाई है परन्तु मेरे ज्ञान में सामयिक मत मतान्तरों एवं सम्प्रदायों के ईश्वर सम्बन्धी

विचारों को वास्तविक रूप में पाठकों के सन्मुख रख कर तुलनात्मक समालोचना करने का किसी विद्वान ने प्रयत्न नहीं किया। मुख्यता इसी विचार को लक्ष्य में रखते हुए मैंने इस पुस्तक को लिखा है।

अन्वेषण शील एवं सत्य की जिज्ञासा रखने वाले पाठक समुदाय के सन्मुख विभिन्न सम्प्रदाओं द्वारा मन्तव्य ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्तों का संग्रह करके उनकी समालोचना करने का मेरा उद्देश्य है जो इस पुस्तक के दूसरे भाग में विस्तार पूर्वक की जायगी। यह प्रथम भाग तो मुख्य विषय की भूमिका मात्र है।

पुस्तक-मुद्रण के समय मुझे कार्य्यवश मध्य भारत में आना पड़ा अतः प्रूफ़ में कुछ अशुद्धियां रह गई हैं जिनके लिये क्षमा याचना करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

रावटी, मध्य भारत
१-५-४०

—देवप्रकाश

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

लेखक—

श्रीमान् शान्तस्वामी अनुभवानन्द जी महाराज

इस हिन्दू जाति का दुर्भाग्य ही समझना चाहिये कि आज कल पढ़े लिखे हिन्दू युवकों में जनतंत्रवाद (Communalism) और समाजवाद (Socialism) का प्रचार ज्यों २ बढ़ रहा है त्यों २ आत्मवाद, चैतन्यवाद, ईश्वरविश्वास और धर्मविश्वास पर तीरन्दाज़ी भी बुरी तरह बढ़ती जा रही है। पछाहीं स्वतंत्रतावाद और विज्ञानवाद ने भारत के अधकचरे युवकों-युवतियों के हृदयों से मानो आत्मविश्वास, ईश्वरविश्वास और धर्मविश्वास की दिवारों को हिला सा दिया है। इसका कारण लोग यही बताते हैं कि "विश्वास और भक्ति की जगह सचाई की खोज ने ले ली है, इसलिये अन्धविश्वासियों की संख्या भी दिन पर दिन घटती जा रही है, धर्मवृत्ति से आम लोगों की श्रद्धा मिटती जा रही है और समाजवाद के पछाहीं दर्शन में ईश्वर जैसी कल्पित एवं घिनौनी सत्ता के लिये कोई जगह नहीं रहने

दी गई है। पछाहीं दर्शनवादियों की दृष्टि में जहां तक विज्ञान की पहुंच है, वहां तक आत्मवाद, परमात्मवाद की कल्पना भी नहीं की जा सकती। संसार की विद्यमानता से किसी को इनकार नहीं हो सकता किन्तु जिन प्राकृत नियमों के अनुसार इसे चलाया जा रहा है, उन्हें कोई भी विज्ञानवादी ईश्वर प्रेरित मानने के लिये मानव बुद्धि को बेबस नहीं कर सकता, ऐसा करना मानो मनुष्य की स्वतंत्रता प्रिय बुद्धि की प्रगति में ही बाधा डालना और उससे अन्याय करना है"।

ऊपर लिखे वाक्य कहने, लिखने, सुनने और पढ़ने के लिये बहुत सुन्दर तथा आकर्षक जान पड़ते हैं किन्तु जो लोग यह बातें कहते हैं, उनके कर्मजीवन, आचारजीवन और व्यवहार को देखते हुए इन बातों पर विश्वास करना कठिन है। "शतपथ ब्राह्मण" १-३-४-२७ में एक नियम दिया गया है कि "जहां दो मनुष्य आपस में झगड़ते आ रहे हों, उनमें से एक कहता हो कि अमुक घटना मैंने किसी से सुनी है और दूसरा यह कहता हो कि, वही घटना मैंने अपनी आंखों से देखी है और वह इस तरह पर घटी थी। तब सुनी सुनाई कहने वाले की अपेक्षा देखने वाले का विश्वास करना चाहिये"।

सुनाने वाले विज्ञान के नाम से हमें चाहे जो कुछ भी सुनायें और वह सुनने में चाहे जितना मीठा लगता हो,

रोचक प्रतीत होता हो, पर जो कुछ विज्ञान के नाम पर होता हुआ हम देख रहे हैं, वह सुनाई गई बातों की अपेक्षा सर्वथा विपरीत और घिनौना है। वर्तमान विज्ञान के नाम पर काम करने वाले बुद्धिवाद ने वास्तविक सत्य की बलि देकर वासनाओं की पूर्ति को ही विज्ञान की ओट में रखने का यत्न किया है। हिन्दू जाति के वर्तमान कर्मजीवन और आज से बहुत नहीं सौ साल पहले के कर्मजीवन की तुलना ही ढिंढोरा पीट २ कर बतला रही है कि पापाचार की बढ़ती हुई आग को बुझाना तो बहुत दूर रहा घटाना भी असंभव के निकट पहुंच रहा है। हां, उस समय के पापाचार और इस समय के पापजीवन, भ्रष्टाचार एवं कपटाचार में इतना अन्तर अवश्य है कि पहले जितने पापाचार, दुराचार, अनाचार और अत्याचार धर्ममन्दिरों की ओट में बैठ कर किये जाते थे, आज उनसे कहीं बढ़ चढ़ कर विज्ञान, स्वतंत्रता और समाजवाद की छत्र छाया में किये जाते हैं।

इस युग के पढ़े लिखे हिन्दू युवकों में से जो लोग विज्ञान और प्रगति की ओट में आत्मवाद, परमात्मवाद एवं धर्मविश्वास पर छींटे डालना ही आवश्यक समझते हैं, उनमें शायद ९५ फी सदी से भी ऊपर ऐसे लोगों की भरती होती है, जिन्हें वास्तविक वैज्ञानिक तत्त्वों और सचाई की खोज से दूर का भी कोई नाता नहीं होता।

यह लोग आमतौर पर पछाहीं विज्ञान के उतने जानकार नहीं होते, जितना के उसकी आड़ लेकर या उसके कन्धे पर बन्दूक रखकर शिकार खेलने के शौकीन होते हैं। इनकी अपनी मनोवृत्ति भी पुराने ढंग के साम्प्रदायक लोगों की सी, किन्तु नई पोशाक में सजी हुई होती है। जिस तरह पुराने ढंग से खेला गया जूआ नए कानून–जूआ रूप से अपराध समझा जाता किन्तु नए ढंग से खेला गया जूआ, घोड़दौड़, लाटरी और सट्टेबाज़ी जूआ नहीं बल्कि व्यवहार बनगया है। इसी प्रकार इन लोगों की मनोवृत्ति नए साज से सजी होने के कारण मनोहर मानी गई है। इस तरह के *उग्माधर्म से न तो पहले युगों में कभी किसी का भला हुआ और नाही अब हो सकता है। न्यूयार्क विश्वविद्यालय के अध्यापक श्री 'कार्ट ब्लडचेज़' के अपने शब्दो में—

Those moderns who insists that God and science are mutually exclusive, are fully as prejudiced as were the early religion dogmatists.

Frontier of science P, 8

अर्थात्–वह लोग जो यह हठ के साथ कहते फिरते हैं कि ईश्वर और विज्ञान एक दूसरे के प्रतिगामी अथवा विरुद्ध

---

* उग्माधर्म अंग्रेज़ी के Daymatism का विकृत रूप है। इसका शब्दार्थ 'कट्टरपन्थ' अथवा 'कट्टरपन्थी' होता है। अपने मत के सिवाय और किसी की न सुनना ही उग्माधर्म का मुख्य उद्देश होता है।

भाव रखते हैं। वह भी पूरी तरह वैसे ही दुराग्रही होते हैं, जैसे पुराने साम्प्रदायिक धर्मवादी हो गए हैं।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो सच्चे मन से यह विश्वास रखते हैं कि भारत में विज्ञानवाद की चर्चा जितनी बढ़ती जायगी, मनुष्य भी अनिवार्य रूप से उतना ही जड़वादी होता जायगा। किन्तु वैज्ञानिक साहित्य की गम्भीर आलोचना और वैज्ञानिक तत्त्वों की खोज करने वाले विद्वानों का मत ऐसा नहीं है। उनका कथन है कि वैज्ञानिक तत्त्वों की गवेषणा और विवेचना ही हमें एक दिन अलौकिक चैतन्य–सत्ता के विश्वास को दृढ़ करने में समर्थ करेगी। कारण यह कि जो विद्वान निश्छल हृदय से वैज्ञानिक तत्त्वों की विवेचना करता है, उसका बुद्धितत्व ज्यों २ उन्नत होता जाता है त्यों २ ही वह सचाई के निकट होता जाता है। सचाई को पालने के उपरांत उसे आत्मसमर्पण करना ही होगा। इसके सिवा और कुछ वह कर ही नहीं सकता।

ऐसे लोगों के निष्कपट विश्वास पर हमें आक्षेप करने का कोई प्रयोजन नहीं किन्तु जो कुछ हम अपनी खुली आंखों से देख रहे हैं उसे भी मिथ्या कहने का साहस नहीं होता। हम देख रहे हैं और स्पष्ट देख रहे हैं कि वर्त्तमान युग का पछाहीं विज्ञान जीवन-निर्माण, समाज-निर्माण, जातिनिर्माण, राष्ट्रनिर्माण और विश्वशान्ति की छाया में

बैठा हुआ भी जीवन विनाश की ओर ही अग्रसर हो रहा है। एक ओर जहां विज्ञान की कृपा से सुख समृद्धि की उन्नति दिखाई जा रही है दूसरी ओर उसी विज्ञान की कृपा से मिनटों में हज़ारों लाखों मनुष्यों को मृत्यु की ठंडी गोद में सुलाने के लिये अनेकानेक हत्याकारी सामग्रियों का भी आविष्कार किया जा रहा है। एक ओर जहां भारत के प्राचीन तपस्वियों की भान्ति वैज्ञानिक विद्वान सत्य की खोज में दिन रात एक किये जा रहे हैं दूसरी ओर लाखों प्रतिभाशाली अनुसन्धान करने वाले धनलोलुप होकर अनीति मार्ग पर चलाने के लिये दुराचार अनाचार एवं व्यभिचार मूलक साधनों के जुटाने में भी वैसे ही परिश्रम कर रहे हैं। इधर जहां अनेक वैज्ञानिक रोगियों के रोग निवारण के लिये नए २ विस्मय कारक उपाय ढूंढने में लगे हैं। उधर उसी विज्ञान की सहायता से क्षण भर में लाखों मातृभूमि के पुत्रों का समाप्त करने के लिये नए २ विषों, विषैली गैसों और बम्बों के तैयार करने में भी व्यस्त हैं। रेडियो की कृपा से एक ओर जहां दूर देशों के समाचार घर बैठे सुनाये जा रहे हैं उसी रेडियो पर बाज़ारी रण्डियों की जेबें भरते हुए आचारजीवन को नष्ट करने वाले गन्दे गीत भी कोमल हृदय बच्चों तक पहुंचाये जा रहे हैं। इधर जहां विज्ञान के नाम पर विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व, विश्वभाई-चारा, अमन, चैन, सुख और शान्ति के लिये अनेक प्रकार

के राग अलापे और अपीलें की जा रही हैं, उधर उसी विज्ञान के सहारे विश्वशान्ति के जंगल में आग लगा कर होली खेलने और मानवजीवन के कोमल कलेवरों को खून के समुन्दर में नहलाने के लिये विश्वयुद्ध की भयानक से भयानक सामग्रियां भी जुटाई जा रही हैं। जैसे मानो सारे यूरोप को ही नहीं संसार को भी मानवसंभास Anthropopholia का रोग हो गया हो। इस तरह यूरोपीय विज्ञान ने सचाई की खोज में उन्नति की हो या नहीं किन्तु यह अब निर्विवाद सिद्ध हो गया है कि उसने प्रलयकारी साधनों के आविष्कार में इतनी उन्नति कर ली है कि वह अपने भयंकर संकल्प में जल्दी से जल्दी सर्वनाश यज्ञ में स्वयं भी सम्मिलित हो सके।

इधर दार्शिक पहलवानों का भी एक विस्तृत दल है जो अपने आदर्शवाद में वैज्ञानिक गहराईयों से कम शक्तिशाली नहीं समझा जाता। इस दल की समस्त शक्तियों का आधार तर्कवाद है। जो बात तर्क सिद्ध नहीं वह मिथ्या है। जो वस्तु तर्क सिद्ध नहीं वह वस्तु ही नहीं और जो सिद्धान्त तर्क से पुष्ट नहीं वह सिद्धान्त भी सिद्धान्त नहीं। इस दल के मत से ईश्वरवाद जैसे तर्क बाहर सिद्धान्त भी तभी मान्य हो सकते हैं, जब वह भी तर्क के भीतर ही आ जा सकें। कोरे तर्कवादी इस नियम को भी शायद नहीं समझना चाहते कि जो वस्तु तत्त्व बुद्धि की

पहुंच से ही परे है, उसे बुद्धि के घेरे में लाया ही कैसे जा सकता है। मानवबुद्धि और ईश्वर अथवा अनन्त चेतना के बीच में अज्ञेयता का जो व्यवधान पड़ा हुआ है, उसे भेद कर पारगामी ((Transparent) होना मनुष्य बुद्धि के लिये उतना ही असाध्य है, जितना कि कानों को बन्द करके केवल आंखों से शब्दवेध करना असाध्य हुआ करता है। प्रत्येक इन्द्रिय अपना एक सीमाबद्ध गोचर (Scope) रखता है। अपने उस गोचरता के घेरे से बाहर उसे काम करने का सामर्थ्य भी नहीं होता और उसकी सत्ता भी उतनी नहीं होती, इसी प्रकार बुद्धि और ज्ञानसूत्र (Sensitive Nerves) भी अपनी पहुंच तक ही पारगामी होते और काम में समर्थ हुआ करते हैं।

तर्क और विज्ञान की अपनी पहुंच भी अपने घेरे से बाहर नहीं हो सकती। वैज्ञानिक बुद्धि भी समस्त सृष्टितत्वों तक दौड़ धूप करने के बाद केवल इतना ही जान सकी है कि मैं अब तक अपनी ही कीली पर घूम रही हूं। सत्य, चैतन्यशक्ति और अनन्त सत्ता को जानने के उद्योग में इतनी ले दे करने पर भी एक घटक आगे न बढ़ सकी और घूम फिर कर अपने ही आस पास चक्कर काटती हुई यही सोच रही हूं कि—

सखा! हमने बहुत सी कोशिशें कीं ताकि कुछ समझें।
अगर समझे तो यह समझे कि अब तक कुछ नहीं समझे॥

अनन्त चेतना और परम-आत्म तत्व जैसी अनिर्वचनीय सत्ता का मानवबुद्धि सीमाबद्ध घेरे में आ जाना स्वयं उस अनन्त की अनन्तता पर ही सन्देह पैदा कर सकता है। इतना ही नहीं बल्कि महामना जैकोबी के शब्दों में तो—

A god whom we can understand would be no god.

अर्थात्—वह जगदीश्वर जिसे हम समझ के घेरे में ले आयें वास्तव में जगदीश्वर नहीं होगा वह कोई और ही वस्तु होगी। ठीक है, जो वस्तु जिस बरतन में समा जाती है, वह उस बरतन की समाई से अवश्य कम होनी चाहिये। मनुष्य बुद्धि के छोटे से सीमाबद्ध मात्र या घेरे में आने वाला ईश्वर फिर अनन्त कैसे रह सकता है? श्रद्धा और विश्वास उसी वस्तु में हुआ करता है जिसे हम अपने से महान् समझें और जो वास्तव में हो भी महान् ही। मानव-बुद्धि जिसे अपने घेरे में ला सकती है उसे वह अपने से महान् नहीं समझ सकती और वह महान् हो भी नहीं सकती।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ज्ञान ही शक्ति है, किन्तु वह ज्ञान भी ज्ञाता की ज्ञेय बुद्धि से घिरा हुआ है, अतः वह सुतरां सीमाबद्ध है। इसी कारण वह सदैव एक देशी रहता है और रहेगा। ऐसी हालत में किसी अनन्त शक्ति को बलपूर्वक अपने में घसीट लाने का यत्न यही परिणाम पैदा करेगा कि घसीट लाने की चेष्टा करने वाला स्वयं

अपनी शक्ति को व्यर्थ करे। जर्मन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री कान्ट (Kant) ने ऐसे लोगों के लिये कहा है कि–

Both parties to the dispute beat the air, they worry their own shadow, for they pass beyond nature to a region where their dogmatic gripe bind nothing to lay hold of.

अर्थात्–इस वाद विवाद में वादी प्रतिवादी दोनों ही हवा पर चोट कर रहे हैं, वह मानों अपनी ही छाया पर चांदमारी कर रहे हैं, क्योंकि वह प्रकृति का उल्लंघन करके ऐसी जगह पर जा पहुंचते हैं, जहां उन्हें अपने २ उग्मा-धर्म अथवा विधि निषेध के वाग्जाल में फंसाने लायक कोई वस्तु मिल ही नहीं सकती।

सत्य तो यह है कि जीवन जगत् में धर्ममन्दिर की नीव आस्तिकता और आस्तिकभावों एवं नियमों की भूमि पर ही रखी गई है और उन्हीं नियमों पर मानवजीवन चलता हुआ सार्थक होता चला आ रहा है। जो लोग इन नियमों को नहीं मानना चाहते, वह चाहे जितना भी बीच बचाव करें, पर भूलों और भटकनों से बच नहीं सकते भारत जैसे धर्मप्रधान देश में आस्तिक भावना का जो अनादर हुआ और हो रहा है, उसका कारण न तो विज्ञान-वाद है और नाही तर्कवाद अथवा समाजवाद। इसके मूल में सबसे बढ़ कर आस्तिकवाद और धर्मजीवन के दुरुपयोग

का ही घातक विष सिद्ध हुआ है। आस्तिकवाद और धर्मजीवन के नाम पर मध्य युग में जो अनाचार, अत्याचार, दुराचार और अन्याय किये गये, उन्ही का मुकाबला करने के लिये अनेक नास्तिक सम्प्रदायों का जन्म हुआ। इससे जहां और बहुत सी हानियां हुईं, वहां सबसे बड़ी हानि यह हुई कि और २ विचार धाराओं के साथ २ सच्ची आस्तिकता भी केवल कहने, सुनने, लिखने, पढ़ने और वेदियों पर बैठ कर व्याख्या करने की थोथी सामग्री बन गई। कंजूस मनुष्य की दौलत जैसे उसे कोई लाभ न पहुंचा कर केवल उसके सन्दूकों की ही शोभा बढ़ाती है, इसी प्रकार हमारी आस्तिकता हमारे कर्मजीवन पर कोई प्रभाव न डाल कर हमारी पोथियों और मन्दिरों की ही शोभा बन गई। इसका फल यही हुआ कि बातूनी ईश्वरवाद दिन पर दिन उन्नत होता गया और धर्मजीवन उसी लेख से नष्ट होता गया।

यदि हममें वास्तविक ईश्वर विश्वास होता और वह हमारी कलम एवं कलाम में ही नहीं, जीवन और उसकी ऊष्मा में प्रवाहित होता तो हममें संसार भर के छल, कपट, मकर, फन्द, फरेब, झूठ, चोरी, ठगी, अनाचार एवं अत्याचार की आग धर धर करती हुई हमें जलाने में सफल न होती। ईश्वर को सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा, सर्वनियन्ता एवं सर्वान्तर्यामी मानने एवं कहने वाले लोग ही जब जानबूझ

कर जीती मक्खी निगलने को आपस में ही लड़ भिड़ रहे हों, मिथ्या से मिथ्या आडम्बर रचते हुए भी लज्जित नहीं बल्कि अभिमान कर रहे हों, "राम नाम जपना–पराया माल अपना" बनाने बताने के लिये किसी भी फन्द फरेब से काम लेना आवश्यक समझते हों, और अदालतों में जाकर ईश्वर को सर्वसाक्षी मान कर भी झूठ के सिवाय सच की परछाहीं तक को पास में न फटकने देते हों, तब बरबस यही कहने को सूझता है कि पता नहीं ईश्वर है भी या नहीं और यदि है तो वह निर्धन निर्बल लोगों को मूर्ख बनाने के लिये हव्वा तो नहीं खड़ा कर रखा !

तर्कवाद की दृष्टि से आत्मविज्ञान के जानने वाले भारतीय और पछाहीं विद्वान भी ईश्वर को तर्क से परे बताते हैं। तर्क विद्या सुतरां बुद्धि तत्व का ही विकास है, अतः जो तत्व बुद्धि से परे है, वह उसके विकास अर्थात् तर्कविद्या से भी परे है। फिर भी जिन अनात्मवादियों अनीश्वरवादियों के मत में तर्क ही सर्वेसर्वा हो, जो तर्क से सिद्ध हुए बिना किसी भी सचाई को स्वीकारने या मानने को तैयार न हों, उसे या उन्हें समझाने के लिये तर्क से बढ़कर और कोई उपयुक्त साधन भी नहीं। ऐसे ही तर्कवीरों को समझाने अथवा उनसे भिड़ने के लिये आस्तिक विद्वान तर्कविद्या का सहारा लिया करते हैं। मानवबुद्धि स्वयं क्योंकि सीमित है, वह अनन्त को अनन्त रूप में ही

ग्रहण करने में असमर्थ है। उसके इस अनन्त स्वरूप को अनन्ताभिमुखी योगी जन ही समाहित अनुभूतियों द्वारा जान सकते हैं, किन्तु दूसरों को उपदेश देने और समझाने के लिये उन्हें भी किसी सीमा तक तर्कवाद का सहारा लेना होता है।

तर्कवाद की सहायता से अनन्त आत्मतत्व को समझाने और सिद्ध करने के लिये संस्कृत साहित्य में अनेक ग्रन्थरत्न लिखे गए हैं, किन्तु भारत की वर्तमान और चलती भाषाओं में संस्कृत की भान्ति खुला साहित्य नहीं पाया जाता। बङ्गला में कुछ पुस्तक लिखे गए हैं, दो तीन पुस्तक गुजराती और मराठी भाषा में भी मैंने पढ़े हैं। किन्तु जो हिन्दी आज भारत की राष्ट्र भाषा होने जा रही है। जिसका शब्द भण्डार एवं ग्रन्थ भण्डार भी दिन पर दिन उन्नत होता जा रहा है, उसमें आत्मवाद जैसे गम्भीर विषय पर बहुत कम पुस्तक लिखे गए हैं। दस बारह साल पहले श्री गंगाप्रशाद जी उपाध्याय ने "आस्तिकवाद" नामक पुस्तक हिन्दी में लिखा था जो कई बार छपा और प्रकाशित हुआ पढ़ने वालों ने उसे अपनाया। किन्तु उसमें ज़ियादातर पछाहीं तर्कवाद को लेकर ही विचार प्रकट किये थे। प्रस्तुत पुस्तक जिसकी भूमिका लिखने के लिये मुझसे अनुरोध किया गया, महाशय देवप्रकाश जी ने लिखी है। इसमें भारतीय दर्शन के आधार पर ही विषय का वर्णन

किया गया है। महाशय देवप्रकाश जी स्वामी दयानन्द जी के पक्के अनुयायी और स्वाध्यायशील हैं। मैं निःसंकोच कहना चाहता हूं कि महाशय जी ने भारतीय दार्शनिक तर्कवाद के सहारे जिस विषय का प्रतिपादन किया है, उसमें वह सफल हुए हैं। पुस्तक आमूल चूल भारतीय तर्कवाद से पूर्ण है और जो लोग तर्क के सिवा किसी भी वस्तु तत्व का निश्चय नहीं करना चाहते, उनके लिये इसमें प्रचुर सामग्री का संग्रह कर दिया गया है।

गुरुदत्त भवन लाहौर
शिवरात्री सं. १९९६

सर्वशुभचिंतक—
शान्तस्वामी अनुभवानन्द

॥ ओ३म् ॥

आस्तिक विचार

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वम् पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

ईशोपनिषद्

वह सत्यस्वरूप भगवान् हिरण्यमय पात्र से ढका हुआ है । जब तक इस सुनहरी आवरण को ऊपर से हटाया नहीं जाता उस सत्य स्वरूप के दर्शन होने असम्भव हैं ।

उपनिषद् के इस सर्वसम्मत सिद्धान्त के अनुसार ही इस समय के मनुष्यों में तरह २ की भ्रमात्मक बातें फैली हुई हैं । मनुष्य प्रकृति की सुनहरी किरणों में फंस कर रह गया है । अनीश्वरवादिता के इस युग में जब कि ज़माने के प्रवाह में बहजाने वाले नौजवानों की कमी नहीं है, ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करना एक बेसुरा राग

प्रतीत होगा। जैसाकि महाकवि 'अकबर' ने भी कहा है-

रक़ीबों ने रपट लिखवाई है जा २ के थाने में।
कि अकबर याद करता है खुदा को इस जमाने में॥

नास्तिकों ने इस बात का बीड़ा उठा लिया मालूम होता है कि संसार से ईश्वर का नामो निशान मिटा कर ही दम लेंगे। इस विचार के लोगों ने संसार के मनुष्यों में बड़ी भ्रमात्मक बातें फैला दी हैं। जन समुदाय भी (अन्धेनैव नीयमाना यथान्धः) के अनुसार आंखें मूंद इसी प्रवाह में बहा जा रहा है।

अब विचारणीय बात यह है कि क्या इस मनोवृत्ति का कारण केवल मनुष्य के मायावादी विचार ही हैं ? या इसका कोई और कारण भी है, जिसने मनुष्यों को ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार न करने पर विवश कर दिया है। क्योंकिः-'कारणाभावात् कार्याभावः' अर्थात् प्रत्येक वस्तु के लिए कोई न कोई कारण आवश्यक होता है।

इस सम्बन्ध में हमारा विश्वास यह है कि यद्यपि मायावाद भी इन विचारों का मूल है तथापि ईश्वर को मानने वाले मतमतान्तरों ने ईश्वर के संबन्ध में जो मिथ्या धारणा बना रखी है और ईश्वर को जिस घृणित तथा बुरे रूप में जनता के सामने पेश किया है, उन विचारों के

कारण ईश्वर के प्रति घृणा पैदा हो जाना अनिवार्य है। विभिन्न सम्प्रदायों ने ईश्वर के स्वरूप को किस २ रूप में पेश किया है—इसका विस्तृत विवरण हम प्रस्तुत पुस्तक के दूसरे भाग में लिखेंगे। पुस्तक के प्रथम भाग में तो हम अनीश्वर-वादी, नास्तिकों की युक्तियों और विचारों की ही विवेचना करेंगे कारण कि नास्तिकों द्वारा फैलाई गई यह दुर्भावनाएं संसार के मनुष्यों के लिए विनाशकारी सिद्ध होरही हैं।

नास्तिकों के प्रायः बहुत से विचारों को उपनिषद् के इस श्लोक में भली भांति वर्णन कर दिया गया है।

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्। संयोग एषां न त्वा-त्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः॥

(श्वेताश्वतर)

ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करने वाले लोग विभिन्न विचार पेश करते हैं। कोई काल से, कोई स्वभाव से, कोई इच्छा से, कोई भूतों से, कोई योनि से, कोई संयोग से सृष्टि उत्पत्ति मानता है। उपनिषद् काल में कई प्रकार के अनीश्वर-वादी पाये जाते थे। यद्यपि आज कल भी कई प्रकार के विचार रखने वाले नास्तिक हैं किन्तु प्रबलता प्रकृति-वादियों की है। अतः हम भी प्रथम उन्हीं की समालोचना करते हैं

॥ प्रकृति-वादी ॥

इनका विचार है कि केवल प्रकृति ही संसार का उपादान, साधारण, तथा निमित्त कारण है। यह एक ऐसी धारणा है कि जिसे कोई भी दार्शनिक स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकिः–

'एक ही वस्तु, एक समय, एक अवस्था, एक स्थान, एक दिशा (जिहत) में निमित्त, साधारण तथा उपादान कारण नहीं हो सकती' यह असम्भव है। हम उन नास्तिकों का ध्यान केवल इस एक ही प्रश्न की ओर दिलाना चाहते हैं। कि वह इस नियम के विरुद्ध कोई दृष्टान्त प्रस्तुत करें। कर्त्ता का अस्तित्व जिस अवस्था में कि वह कर्त्ता है कर्म और कार्य्य से पृथक् होना आवश्यक है। एक होने पर क्रिया का संगतिकरण नहीं हो सकता। जहां जहां क्रमशः क्रिया विद्यमान होगी वहां वहां कर्त्ता अलग मानना आवश्यक है।

इस विचार को लक्ष्य में रखते हुए दो प्रकार के पदार्थ मानना आवश्यक है। एक जड़ दूसरे चेतन, जड़ पदार्थ तो ज्ञान से शून्य होने के कारण कर्त्ता नहीं हो सकते। दूसरी चेतना शक्ति, अगर इस शक्ति को एक माना जाए तो एक ईश्वर की सिद्धि हो गई। और अगर इसको बहुत माना जाए तो कई ईश्वरों की सिद्धि होजाएगी।

नास्तिकों का कहना है कि प्रकृति के कुछ अवयव स्वयमेव मिल जाते हैं और उनमें चेतनता पैदा हो जाती है। जिससे सृष्टि की उत्पत्ति होती है । यह कथन सर्वथा निराधार है। क्योंकि अवयवों के मिलने की यह चार अवस्थाएं होंगी।

अवयवों को बिन्दु से कल्पना कीजिए। उनके मिलने की अवस्था. या तो वे रेखा की सूरत में होगी किन्तु रेखा............में केवल लम्बाई होती है। इससे कोई वस्तु नहीं बन सकती। या तल (सतह) ⁚ ⁚ की शकल में होगी। इससे भी कोई चीज़ उत्पन्न नहीं हो सकती। या तीसरी दशा त्रिकोण ∴ की हो सकती है यह दशा भी उत्पत्ति के लिए सिद्ध नहीं हो सकती है और या बहुत से मिलकर गोलाकार (०) की दशा में हो जायेंगे। इस अवस्था में भी इस प्रकार क्रमबद्ध संसार की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। सारांश यह कि जब तक परमात्मा प्राकृतिक परमाणुओं में गति तथा रूप का संचार न करे तब तक इन परमाणुओं से कुछ नहीं बन सकता।

क्योंकि सूर्य्य, चन्द्र, पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रह आदि की उत्पत्ति, यथा समय गति, ऋतुओं का परिवर्त्तन आदि इन अवस्थाओं में कदापि स्वयमेव नहीं हो सकता। हम पूछते हैं कि प्रकृति के किस भाग का यह स्वभाव है। अग्नि का गुण रूप है (रूपो वै तेजः)। पृथ्वी का गंध है

(व्यवस्थितः पृथिव्याम् गंधः)। जल का गुण शीतता है (अप्सु शीतता)। वायुका स्पर्श है (स्पर्शवान् वायुः)। आकाश चूंकि शून्य है, अतः उसका अपना कोई गुण नहीं। अपितु उसका शब्द गुण संयोगजन्य है। आकाश का लक्षण तो केवल निष्क्रमण और प्रवेश नहीं है। यथा- (निष्क्रमणं प्रवेशन-मित्याकाशस्य लिंगम्) वैशेशिक।

आकाश तो शून्य है। शेष चारों ही परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। यदि पृथ्वी के मूल तत्त्व की अधिकता हो तो वह सबको स्थूल करदे। जलकी अधिकता सबको बहादे। अग्नि सबको जलादे। वायु सबको बखेर दे। अतः पृथक् २ तो इनमें संसार को उत्पन्न करने वाला कोई गुण विद्यमान नहीं। शेष रहा चारों का मिलकर संसार का उत्पादन करना इस पर हम पूछेंगे कि यह चारों तत्त्व सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व पृथक् २ होते हैं या मिले हुए। मिले हुए होने से नाशवान होंगे। और यदि पृथक होते हैं तो आकाश में इनके रहने के लिए पृथक् २ स्थान नियत हैं या नहीं? यदि नहीं तो इनका सम्मिश्रण हो जाएगा? यदि पृथक् २ स्थान हैं तो इनके परस्पर मिलने का कारण बताइए। क्योंकि कारण के बिना कार्य्य असम्भव है। फिर एक प्रश्न और कि इन चारों में किसके अन्दर मिश्रण शक्ति पैदा होती है? या यह शक्ति कहीं बाहर से आती है?

यदि बाहर से आती है तो कहां से ? यदि भीतर से उत्पन्न होती है तो इसकी उत्पत्ति का कारण बताइए।

फिर हम पूछते हैं, कि माद्दा के अन्दर बनने की शक्ति अधिक है या बिगड़ने की, अथवा बराबर ? इन तीनों अवस्थाओं में से एक का मानना आवश्यक है। क्योंकि द्रव्य का लक्षण ही यही है। 'क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्'।

इस पर हम कहेंगे कि यदि बनने की शक्ति अधिक है तो बनता ही जाएगा। यह प्रत्यक्ष के विपरीत है। क्योंकि असंख्य वर्षों से यह क्रम चला आरहा है कि एक ही ध्रुव पर सहस्रों नक्षत्र आदि घूम जाते हैं और न उनके घूमने के समय में अन्तर आता है न परस्पर टकराते हैं। यदि यह सारा क्रम किसी असीम चेतन शक्ति के नियंत्रण में न होता और प्रकृति स्वयं ही नित्य नये सूर्य्य चन्द्र नक्षत्रादि उत्पन्न करती जाती तो संसार का सारा क्रम परस्पर टकरा कर नष्ट भ्रष्ट हो जाता। इससे सिद्ध हुआ कि प्रकृति के अन्दर स्वयमेव बनने की शक्ति नहीं है। यदि होतो तो हमारे समक्ष सैकड़ों सूर्य्य चन्द्र और बनगए होते। यदि यह मान लिया जाए कि बिगड़ने की शक्ति अधिक है तो कोई वस्तु बनही नहीं सकेगी। परन्तु यह भी कल्पनातीत है और यदि दोनों शक्ति बराबर मान ली जायें तो एक

ओर से बनता जायगा तथा दूसरी ओर से बिगड़ता जायगा तो न कुछ बनेगा न बिगड़ेगा और यह चक्र सदा ही बना रहेगा।

यह दार्शनिक सिद्धान्त सर्वसम्मत है कि जड़ वस्तु सर्वथा ज्ञानशून्य होती है। अतः उसके स्वयं बनने व बिगड़ने की कल्पना ही निराधार है। यदि कोई इस पर भी हठ करे तो इसकी तीन अवस्थाएं हो सकती हैं। या तो सृष्टि का यह सारा क्रम संयोग वश हो या स्वाभाविक या दोनों से भिन्न। संयोग वश वस्तु अवश्यम्भावी नहीं हो सकती है। परन्तु सृष्टि सर्वथा अवश्यम्भावी है। या प्रकृति में बनने की शक्ति स्वाभाविक है। सो इसका खंडन हम कर ही चुके हैं कि प्रकृति के किसी भाग में बनने की स्वयमेव शक्ति नहीं। शेष रही तीसरी दशा कि किसी निमित्त से सृष्टि बनी हो। यदि वह निमित्त बाहर से आता है तो ब्रह्म की शक्ति की सिद्धि हो गई। और यदि भीतर से पैदा होता है तो इसका कारण बताइए?

अटलसिद्धान्त

यह सिद्धान्त अटल है कि किसी वस्तु के सृजन के पूर्व वस्तुका चित्र, कर्त्ता के मस्तिष्क में आता है। क्या कोई नास्तिक इस बात के लिए कोई प्रमाण पेश कर सकता है कि समस्त सृष्टि के बनने से पहले सृष्टि का पूर्ण

चित्र प्रकृति के विचार में था ? कारण कि जड़ वस्तु सर्वथा ज्ञानशून्य होती है। अतः इसके अन्दर विचार आना ही मिथ्या है। और यदि इस पर भी कोई दुराग्रह करे तो हम पूछेंगे कि प्रकृति की वह शक्ति उसमें अब विद्यमान है कि नहीं ? यदि है तो उसका प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता ?

एक ही वस्तु से कोई चीज़ उत्पन्न नहीं हो सकती। इसकी विवेचना हम आगे चलकर करेंगे।

कुछ नास्तिक ऐसा कहते हैं कि जब हर वस्तु के लिए कर्त्ता आवश्यक है तो ईश्वर के लिए भी किसी कर्त्ता की आवश्यकता होगी। इस प्रश्न से अनीश्वर वादियों की बुद्धिमत्ता का भली भांति परिचय मिल जाता है। हमारा दावा तो यह है कि कर्म के लिए कर्त्ता चाहिए, कार्य्य के लिए कारण चाहिए। किन्तु ईश्वर न तो कर्म है न कार्य्य, अतः यह प्रश्न ही नहीं हो सकता।

न तस्य कार्यं करणं विद्यते।

अतः परमात्मा निमित्त कारण है। और कारण का कारण नहीं होता।

मूलं मूलावात् मूलम मूलम्।

अर्थात्–मूल का मूल नहीं होता। यदि माना जाय

तो अनवस्था दोष आता है। यथा कर्त्ता, उस का कर्त्ता फिर उसका कर्त्ता इत्यादि। फिर उसकी समाप्ति नहीं होगी। यदि की समाप्ति करेंगे तो अन्योन्याश्रय दोष आएगा। और वस्तु की सिद्धि उसके उत्पन्न होने से प्रथम माननी पड़ेगी। इस अवस्था में कोई भी वस्तु संसार में उत्पन्न नहीं हो सकेगी। हालांकि सृष्टि हमारे समक्ष विद्यमान है। अतः नास्तिकों की यह युक्ति ही निराधार है।

कुछ नास्तिकों का यह भी मत है कि हम अपने माता पिता के रज और वीर्य्य से उत्पन्न होते हैं तदनन्तर मरने पर समाप्त हो जाते हैं ऐसा मानने वालों का मस्तिष्क सर्वथा बुद्धि से रिक्त प्रतीत होता है क्योंकि माता पिता के रज वीर्य्य से उत्पत्ति मानने पर प्रथम तो अनुवस्था दोष आयगा जैसे 'देवदत्त' का पिता 'यज्ञदत्त' उसका 'ब्रह्मदत्त' इत्यादि परमपरा सिलसला आगे चलता जायगा जिस की समाप्ति ही नहीं होगी इस अवस्था में अनुवस्था दोष आयगा क्योंकि हमारा शरीर सावयत है सावयत वस्तु नित्य नहीं हो सकती। यदि समाप्ति करेंगे तो अन्याऽन्या आश्रय दोष आयगा अतः इस पर असम्भव दोष आयगा।

दूसरे कर्म फल की मर्यादा संसार में प्रत्यक्ष विद्यमान है रज वीर्य्य से उत्पत्ति और फिर विनाश मानने पर कर्म फल की सत्ता उड़ जाती है।

तीसरे यदि संसार का उद्देश्य केवल इतना ही मान लिया जावे कि मृत्यु के पीछे बस हम अभाव को प्राप्त हो जायेंगे तो यह सिद्धान्त संसार के लिये अतयन्त हानि करने वाला होगा और सब को पाप में धकेल देगा।

चोथे यह भी देखने में आता है कि एक हृष्ट पुष्ट बच्चा जिस के शरीर में जीवन शक्ति बड़ी प्रबल प्रतीत होती है अपने माता पिता के सामने मृत्यु को प्राप्त हो जाता है यदि माता पिता उस बच्चा के कर्ता होते तो उसको कदापि मरने ना देते।

पांचवें माता पिता को तो इस बात का ज्ञान मात्र भी नहीं कि बच्चा कैसे बन रहा है उसकी नाड़ियां कितनी हैं कैसे बन रही हैं? दिमाग़ क्या है और कैसे बन रहा है इत्यादि। इस अवस्था में यह मानना सर्वथा मिथ्या है कि बच्चा के कर्ता उस के माता पिता हैं।

एक और भ्रान्ति

नास्तिक कहते हैं कि यदि ईश्वर है तो हमे आंखों से प्रत्यक्ष करा दीजिए। यह प्रश्न भी सिरे से गलत है क्योंकि यह सर्वसमत सिद्धान्त है कि हमारी आंख चूंकि स्थूल है अतः स्थूल वस्तुओं को ही देख सकती है और उन उन स्थूल वस्तुओं को देख सकती है जो २ आंख की सीमा में आ सकती हों। आंख के देखने के लिए यह

नियम है कि जहां तक आंख की किरण बाहर जाकर भीतर लौट सकती है वहीं तक ही देख सकती है। अतीन्द्रिय वस्तुओं तक इसकी पहुँच नहीं है और परमात्मा चूंकि अतीन्द्रिय है अतः यह प्रकृति जन्य तथा सीमित चक्षु उस असीम को देखने में सर्वथा असमर्थ हैं। यथा—

न तत्रचक्षुर्गच्छति न वाक् गच्छति।

केनउपनिषद्

आंख अग्निभूत से सम्बन्धित है इसलिए आंख को रूप का ही प्रत्यक्ष होता है जो कि अग्नि का गुण है। यह प्रश्न भी ऐसे ही बुद्धि हीन मनुष्यों का है जैसे कोई कहे कि ईश्वर जागता है कि सोता? खाता है कि पीता? आदि क्योंकि यह सब बातें प्रकृति संयोग जन्य चीज़ों पर लागू हो सकती हैं। अध्यात्मिक वस्तुओं पर नहीं। प्राकृतिक वस्तुओं के और नियम हैं और अध्यात्मिक वस्तुओं के और। फिर भी कई दुराग्रही मनुष्य संसार में भ्रान्ति फैलाने के लिए ऐसे निराधार व निर्मूल प्रश्न कर ही देते हैं। हम आगे चलकर इसकी विस्तृत विवेचना करेंगे कि प्रत्यक्ष प्रमाण ईश्वर सिद्धि में बाधक नहीं है।

यहां पर प्रत्यक्ष वादियों से पूछेंगे कि आपका प्रत्यक्ष संसार में किस वस्तु की सिद्धि कर सकता है? प्रत्यक्ष से तो केवल वस्तु का भान हो सकता है। जैसे—

इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्य मव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥

अर्थ–इन्द्रिय–चक्षुरादि अर्थ–पदार्थ घट पटादि इनके संयोग से उत्पन्न जो ज्ञान वह प्रत्यक्ष कहलाता है। परन्तु वह ज्ञान निश्चयात्मक होने पर भी (अव्यपदेश्य) शब्द बोधातिरिक्त हो। 'वात्स्यायन' अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण तो केवल वस्तु का भान ही करा सकता है, वस्तु की वास्तविकता जानने के लिये शब्द प्रमाण के आश्रित है।

एक बात और भी जानने के योग्य है कि यदि सब पदार्थों का ज्ञान प्रत्यक्ष से ही होता तो शब्द अनुमान आदि प्रमाणों के मानने की आवश्यकता ही न होती। यदि सब वस्तुओं की सिद्धि के लिये केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को ही स्वीकार किया जावे तो बहुत से दोष आजायेंगे। जैसे यह सर्व सम्मत सिद्धान्त है कि घड़े को एक कुम्हार ने हमारे सामने बनाया। फिर जिस समय भी कोई घड़ा हमारे समक्ष आएगा तो हम समझ लेंगे कि इन घड़ों के बनाने वाला भी कोई कुम्हार ही है। यद्यपि उन घड़ों को कुम्हार ने हमारे सामने नहीं बनाया। इसी प्रकार दूसरा दृष्टान्त हमारे सामने घड़ी का है जो दूसरे देश में रहने वाले किसी कलाकार ने बनाई है हमने घड़ी को बनते हुए प्रत्यक्ष नहीं

देखा किन्तु घड़े को देखा है इस घड़े के उदाहरण से हम समझ सकते हैं कि जैसे घड़ा कृत्रिम है वैसे ही घड़ी भी कृत्रिम है। इस कृत्रिम हेतु से घड़ी के कर्त्ता का निश्चय अवश्य करेंगे। इसी प्रकार सृष्टि भी कृत्रिम है अतः इसके कर्त्ता का ज्ञान भी अवश्य होगा। नियम हमारे समक्ष है कर्म को देख कर कर्त्ता का, नियम को देख कर नियन्ता का, प्रबन्ध को देख कर प्रबन्धक का, सृष्टि को देख कर सृष्टा का ज्ञान होता है। इतना कहने पर आगे हम लिखते हैं कि—

ईश्वर सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण बाधक नहीं है।

नास्तिकों का कहना है कि यदि ईश्वर है तो हमें इन आंखों से दिखा दीजिये यदि नहीं दिखा सकते तो ईश्वर का मानना हठधर्मी और दुराग्रह है। हम पहले लिख आए हैं कि ईश्वर के सम्बन्ध में यह प्रश्न करना सर्वथा निर्मूल है। ईश्वर अतीन्द्रिय है, अतः इन्द्रिय जन्य ज्ञान उस पर लागू नहीं होता। अतः ईश्वर दृष्टि का विषय नहीं और नाहीं कोई व्यक्ति ईश्वर को आंखों से देख सकता है। तथापि ईश्वर है और ऐसे ही ईश्वर का मानना युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध है अतः ईश्वर सत्ता पर विश्वास रखने वालों को हठधर्मी और दुराग्रही नहीं कहा जा सकता। कारण यह है कि किसी वस्तु का आंखों से दिखाई न देना उस वस्तु के न होने की दलील नहीं है। क्योंकि संसार

में सहस्रों पदार्थ ऐसे हैं जिन को हम सत्ता, प्रभाव और नियमों के द्वारा अनुभव कर सकते हैं। यदि यह सत्य हो कि आंखों से दिखाई न देना किसी भी वस्तु के न होने का साधक है तो निश्चय ही उस वस्तु पर विश्वास करना दुराग्रह कहा जासकता है परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं। अपितु सर्वथा इसके विपरीत है। हम पहले लिख चुके हैं कि अध्यात्मिक वस्तुओं पर यह नियम लागू नहीं होता। यहां पर यह बतायेंगे कि प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों पर भी सर्वथा यह नियम लागू नहीं होता क्योंकि संसार में अगणित वस्तुएं ऐसी हैं जो आंखों से दिखाई नहीं देतीं और संसार का कोई भी व्यक्ति उनकी सत्ता से इन्कार नहीं कर सकता। जैसे भूख, प्यास, इर्षा, द्वेष, लोभ, क्रोध, शब्द, स्पर्श, रस, गंध, वायु, मन, बुद्धि, पीड़ा, परमाणु, भूमि का घूमना, आदि।

जो व्यक्ति उपरोक्त वस्तुओं को मानता हुआ इनको आंखों से दिखाई देने वाला मानता है, उससे हम बल पूर्वक पूछेंगे कि इनका रूप रंग बतलाइये और इनको आंखों से दिखा दीजिये। परन्तु कोई भी इन वस्तुओं को दिखाने में समर्थ नहीं। मन, बुद्धि, वायु, आदि लोक सिद्ध तथा व्यवहार का प्रधान हेतु हैं, विना दिखाई देने और विना रूप रंग जाने इनकी सत्ता से इन्कार क्यों नहीं किया

जाता? ऐसा कोई व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता जो वायु का रूप रंग निश्चयात्मिक बतला सके। परन्तु प्रत्येक मनुष्य वायु को सांस द्वारा भीतर ग्रहण करता है तथा दूसरों को श्वास लेते देखता है। मगर आज तक किसी ने वायु का रूप रंग नहीं देखा। तथापि वायु से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

जो लोग ईश्वर को इस लिये नहीं मानते कि ईश्वर दिखाई नहीं देता उनको चाहिये कि वह मन, बुद्धि, वायु, भूख, प्यास, प्रेम, क्रोध गंधादि को भी मानना छोड़ दें। जब तक इन उपरोक्त अदृश्य वस्तुओं को माना जाता है। तब तक ईश्वर के विषय में उनको यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि यदि ईश्वर होता तो अवश्य दिखाई देता।

हमने उपरोक्त अदृश्य वस्तुओं के उदाहरण द्वारा यह प्रमाणित किया है कि किसी भी वस्तु की सत्ता से केवल इस लिये इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह दृष्टि गोचर नहीं होती। अथवा उसे देख नहीं सकते। अतः जैसे अदृश्य होने से मन, बुद्धि और गंध स्पर्श आदि वस्तुओं का अभाव सिद्ध नहीं होता वैसे ही दिखाई न देने से ईश्वर का भी अभाव सिद्ध नहीं हो सकता। हम इस बात को पुष्ट और सिद्ध करने के लिए कुछ और कारणों

पर भी प्रकाश डालना चाहते हैं जिससे यह ज्ञात हो सके कि दिखाई न देने के कारण किसी भी वस्तु से इन्कार करना भारी भूल है पूर्वोक्त भूख, प्यास, मन, बुद्धि, वायु आदि के उदाहरण में ऐसी वस्तुएं गिनाई गई हैं जो स्वरूप से ही अदृश्य स्वभाव वाली हैं और उनके न देखे जाने पर भी उनकी सत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता इसी प्रकार ईश्वर भी अदृश्य स्वभाव वाला है। अतः उसकी सत्ता से इन्कार भी नहीं किया जा सकता।

अब दूसरे प्रकार से इस विचार को उपस्थित करते हैं कि दृश्य स्वभाव वाली वस्तुएं भी कुछ बाधाओं के कारण दृष्टि गोचर नहीं होतीं और किसी वस्तु के दृष्टि गोचर न होने में कौनसी बाधाएं हैं। बात यह है कि दृश्यमान वस्तु भी कारण वश अदृश्य हो सकती है। वस्तु के दिखाई न देने में आठ कारण हैं। यदि हम उनको जान लें कि किन कारणों से वस्तु दिखाई नहीं देती तो ईश्वर के विषय में अदृश्यत्व हेतु कभी बाधक नहीं ठहर सकता अतः तत्व ज्ञानार्थ अदृश्यत्व के कारणों का परिज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। सांख्य कारिका में इस सम्बन्ध में कहा है—

अति दूरात् सामीप्यादिन्द्रिय घातान्मनोऽनवस्था-नात् । सौक्ष्म्याद्व्यवधानात् अभिभवात् समानाभिहाराच्च ॥

१ अत्यन्त दूर होने से—कोई पदार्थ दिखाई नहीं दे सकता। क्योंकि जो वस्तु दृष्टि की सीमा के परे है और आंख की रश्मि वहां नहीं पहुंच सकती उस वस्तु को हम सामने होते हुए भी नहीं देख सकते। जैसे सौ कोस पर हमारी दृष्टि नहीं पहुंच सकती वहां की किसी भी वस्तु को हम नहीं देख सकते। और कुछ दूर होने से हमारी दृष्टि ठीक काम नहीं करती वस्तुके देखने में भ्रान्ति खा जाते हैं। दूर से देख कर मनुष्य गौ को भेड़, रस्सी को सर्प समझ लेते हैं आकाश में रात्रि के समय जब थोड़े २ बादल होते हैं, चलते बादल हैं, परन्तु हम यह समझते हैं कि चन्द्रमा बड़े प्रबल वेग से दौड़ रहा है। अतः वस्तु का दृष्टि की सीमा से परे होना वस्तु के न होने का कारण नहीं है।

२ सामीप्यात्—अत्यन्त समीप होने से भी कोई पदार्थ दिखाई नहीं देता जैसे आंख की लाली या आंख में पड़ा हुआ काजल।

३ इन्द्रिय घातात्— आंख के खराब होने अथवा सीमाबद्ध न होने से भी कोई पदार्थ दिखाई नहीं देता। जैसे आंख के दुखने से या अन्धी होने से। इस पर यदि अन्धा कहे कि सूर्य्य-चन्द्रादि नहीं हैं तो उसकी बात को कोई प्रमाण नहीं मान सकता क्योंकि आंख के दोष से

वस्तु का अभाव सिद्ध नहीं हो सकता। आंख का दुखना और अन्धा होना तो एक तरफ रहा आंख तो देखती हुई भी भ्रान्ति में पड़ जाती है जैसे दो रेल गाड़ीयां पास २ दो लाइनों पर खड़ी होती हैं आंख दूसरी चलती हुई गाड़ी को देख कर यह निश्चय करती है कि जिस पर हम बैठे हैं वह गाड़ी दौड़ रही है। पृथ्वी बड़े वेग से घूम रही है परन्तु आंख उसको नहीं देख सकती। हम अनीश्वर वादियों से जो ईश्वर को इस लिए नहीं मानते कि ईश्वर दिखाई नहीं देता यह प्रश्न करेंगे कि वे पृथ्वी का घूमना ही किसी मनुष्य को इन आंखों से दिखादें।

जिस समय हम दरिया के अन्दर किश्ती पर बैठे होते हैं, घूमती किश्ती है परन्तु हम यह समझते हैं कि यह समस्त आकाश मण्डल में स्थित वस्तुएं घूम रही हैं। अतः आंख के दोष युक्त होने और वस्तु का दृष्टि की सीमा के बाहिर होना वस्तु की प्रतीति में बाधक है। इस बाधकता से वस्तु का अभाव सिद्ध नहीं हो सकता।

४ मनोऽनवस्थानात्-मन के अन्य स्थान पर होने से भी पदार्थ की प्रतीति नहीं होती चाहे कोई वस्तु हमारे बिल्कुल समीप ही क्यों न हो परन्तु जब हमारा मन किसी और विचार में मग्न हो तब भी सामने पड़ी हुई वस्तु का ज्ञान नहीं होता। कहते हैं किसी राजा ने इस विषय को

साक्षात् करने के लिए एक मनुष्य के हाथ में दूध का भरा हुआ कटोरा रख कर कहा कि इसको लेकर बाज़ार की परिक्रमा करो। यदि एक कतरा भी दूध का बर्तन से गिर गया तो फांसी का दण्ड दिया जाएगा। कहते हैं कि महाराज ने बाज़ार को बड़ी अच्छी तरह सजा दिया और स्थान २ पर बाजे बजाने का प्रबन्ध कर दिया। वह मनुष्य दूध का बासन लेकर सारे बाज़ारों में से घूम कर लौट आया उसके लौटने पर उस से पूछा गया कि तूने बाज़ारों में क्या देखा। उसने कहा मेरा मन तो दूधके प्याले में लगा हुआ था इसलिये मैंने बाजार में कुछ भी नहीं देखा। इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि जब मन दूसरे विषयों में संलग्न हो तो समक्ष में स्थित वस्तुएं भी दृष्टिगोचर नहीं होतीं। इससे यह जान लेना मिथ्या नहीं कि जब तक हमारा मन प्राकृतिक पदार्थों में फंसा हुआ है तब तक उस सूक्ष्म रूप भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते।

५ सौक्ष्म्यात्– अत्यन्त सूक्ष्म होने से भी पदार्थ दिखाई नहीं दे सकता जैसे–परमाणु, आत्मा, वायु आदि पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म हैं। इसी कारण दिखाई नहीं देते। आंख स्वयं स्थूल है इसमें इतनी शक्ति और योग्यता कहां कि वह इन सूक्ष्म वस्तुओं तक पहुंच सके? वह भगवान् तो इन पदार्थों से भी अत्यन्त सूक्ष्म है उसके लिये यह

प्रश्न करना कि आंखों से दिखाओ केवल मूर्खता है, क्योंकि जब वायु और परमाणु जैसे पदार्थों को आंख देखने में असमर्थ है तो उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म भगवान् को कैसे देख सकती है ?

६ व्यवधानात्– ओट में होने से भी कोई पदार्थ दिखाई नहीं देता जैसे पर्दे के पीछे कोई चीज़ हो या सन्दूक में रखी हो अथवा दीवार के पीछे पड़ी हो तो ऐसी अवस्था में भी वस्तु दिखाई नहीं दे सकती। अतः जब तक हमारे अन्तःकरण पर अविद्या का पर्दा लटक रहा है, तब तक उस सत्य स्वरूप भगवान् के दर्शन कैसे हो सकते हैं।

७ अभिभवात्–अभिभव से भी पदार्थ दिखाई नहीं देता जैसे दिन के समय नक्षत्र या प्रचण्ड अग्नि में पड़े हुए लोहे और कोयले का कालापन प्रतीत नहीं होता। उसी प्रकार चांदी और सोने का वास्तविक रंग भी अग्नि में प्रतीत नहीं होता अतः अग्नि भूत पदार्थों का दृष्टि गोचर न होना उनके अभाव का साधक नहीं हो सकता।

८ समाना भिहारात्–मिले हुए होने से भी पदार्थ दिखाई नहीं देते। जैसे १० सेर दूध में १ सेर पानी, पानी में खाण्ड, आटे में नमक, मिला दिया जाए तो दृष्टि गोचर नहीं होते तिलों में तेल, दही में मक्खन, लकड़ी में

अग्नि इत्यादि पदार्थ दिखाई नहीं देते। इसी प्रकार परमात्मा तो सृष्टि के सब पदार्थों के अन्तर्गत अत्यन्त सूक्ष्म होकर विचर रहा है।

प्रजापति श्चरति गर्भेऽन्तर जायमानः।

वेद

वह इन स्थूल आंखों से कैसे देखा जा सकता है? उपरोक्त कारणों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि न केवल भूख प्यास और मन, बुद्धि आदि अदृश्य स्वभाव वाली वस्तुएं ही आंखों से दिखाई नहीं देतीं। तथा परमाणु, आत्मा और वायु आदि पदार्थ भी सूक्ष्म होने से दृष्टि के विषय से बाहिर हैं। अपितु दृश्य स्वभाव वाली वस्तुएं भी कई अवस्थाओं में अदृश्य होती हैं। जब इन वस्तुओं की स्थिति इस प्रकार है तो ईश्वर के विषय में अदृश्य होने के कारण उसका इन्कार करना सर्वथा न्याय विरुद्ध और हठ धर्मी क्यों न कहा जाए।

इतने पर भी कई एक आग्रहग्रहग्राहिल लोग कहा करते हैं कि ईश्वर की सिद्धि असम्भव है क्योंकि प्रत्यक्ष आदि प्रमाण ईश्वर की सिद्धि में बाधा उपस्थित करते हैं। और जिस पदार्थ की सत्ता का विरोध करने वाले प्रत्यक्ष आदि कई प्रबल प्रमाण हों, उसकी सिद्धि किसी भी बल बूते पर नहीं की जा सकती।

यदि सचमुच ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष आदि बाधक हैं तो निश्चय ही तत्त्वज्ञानाभिलाषी के लिये यह विषय विचारणीय होना चाहिये इसीलिये हमारा भी विचार है कि पहले इसी बात का निर्णय करें कि क्या ईश्वर सिद्धि में प्रत्यक्षादि से बाधा यथार्थ है या केवल कथनमात्र ही है। यदि सच हो तो उन का साथ देने को हमें भी बाध्य होना पड़ेगा और यदि उन लोगों का कथन अयुक्त अथवा न्याय विरुद्ध सिद्ध हो जाय तो निश्चय ही नास्तिकों को अनीश्वर-वाद के कीचड़ से निकल कर ईश्वरवाद को स्वीकार करने के लिये विवश होना पड़ेगा।

प्रत्यक्ष की वास्तविकता को ना समझ कर कुछ लोग कहा करते हैं कि जैसे खरगोश के सींग अथवा बन्ध्या का पुत्र होना असम्भव है वैसे ही ईश्वर की सिद्धि भी असम्भव है, ईश्वर का होना इसी लिये प्रत्यक्ष से बाधित है कि यदि ईश्वर नामक कोई पदार्थ संसार में होता तो अवश्य दिखाई देता। जैसे कि खरगोश (सहे) के यदि सींग होते अथवा बन्ध्या का पुत्र यदि होता तो अवश्य दिखाई देता, परन्तु सौ ऐनक लगाने पर भी खरगोश के सींग और बन्ध्या का पुत्र दिखाई नहीं देता, इतने पर भी यदि कोई दुराग्रही हठ पूर्वक कहा करे कि मैंने बन्ध्या के पुत्र की बरात देखी है तथा बन्ध्या पुत्र ने खरगोश के सींगों का बना हुआ लम्बा

धनुष धारण किया हुआ था तो ऐसी अनर्गल गप्प मारने वाले को सभी लोग उन्मत्त या पागल ही कहेंगे। ऐसे ही जो लोग ईश्वर ईश्वर चिल्लाते फिरते हैं और भगवान् को रट लगाते हैं उनको भी पागल ही समझना चाहिये क्योंकि लाख दूरबीन और करोड़ों ऐनकें लगाने पर भी ईश्वर का कहीं पता नहीं मिलता। यदि सचमुच ईश्वर होता तो अवश्य प्रत्यक्ष होता अतः जैसे शशशृंग और बन्ध्यापुत्र की सत्ता असम्भव है वैसे ही ईश्वर की सत्ता भी असम्भव है।

ईश्वर की सत्ता शशशृंग और बन्ध्या पुत्र के समान नहीं है अतः ईश्वर की सत्ता इनके समान असम्भव नहीं कही जा सकती। क्यों नहीं कही जा सकती? इसलिये कि शश शृंग दो वस्तुओं का नाम है, एक शश (खरगोश) दूसरे शृंग। ऐसे ही बन्ध्या और पुत्र यह भी दो वस्तु हैं। हम पूछ सकते हैं कि इन्कार शश की सत्ता से किया जा रहा है या शृंग की अथवा बन्ध्या की सत्ता असम्भव कही जा रही है या पुत्र की? यदि शश की सत्ता असम्भव कही जा रही है तो सैंकड़ों शशों को दिखाया जा सकता है और यदि शृंगों का होना असम्भव कहा जा रहा है तो हज़ारों गौ भैंस आदि पशु दिखाये जा सकते हैं जिनके सिरों पर सींग दिखाई दे सकते हैं। इसी प्रकार सैंकड़ों

स्त्रियें वन्ध्या दिखाई दे सकती हैं और हज़ारों पुत्र भी देखने को मिल सकते हैं। यदि कहा जावे कि शश और शृंग दोनों हा हैं परन्तु निषेध दोनों के सम्बन्ध का किया जा रहा है ऐसे ही वन्ध्या और पुत्र तो हैं परन्तु इन्कार दोनों के सम्बन्ध का है। यदि इन्कार दोनों में से एक का भी नहीं किन्तु तीसरे पदार्थ सम्बन्ध का इन्कार है जो कि दोनों को मिलाता है तो हम कहेंगे कि दो भाव-पदार्थों में सम्बन्ध का अभाव और चीज़ है तथा एक ही भावपदार्थ का प्रश्न और चीज़ है। प्रश्न ईश्वर की सत्ता पर था परन्तु आ पड़ा सम्बन्ध के अभाव पर। किसी सम्बन्ध का न होना ईश्वर की सत्ता का प्रतिषेध नहीं कर सकता। क्योंकि सम्बन्ध का होना भाव पदार्थ का ही धर्म हो सकता है अभाव का नहीं। दूसरी बात यह है कि सम्बन्ध की सत्ता से इन्कार करना भी बुद्धिमानी नहीं कहा जा सकता क्योंकि संसार का कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जिसके साथ किसी अन्य पदार्थ का सम्बन्ध न हो। इस लिये सम्बन्ध की सत्ता भी असम्भव नहीं सिद्ध हो सकती। यदि कहा जावे कि खरगोश के साथ सींग का और वन्ध्या के साथ पुत्र का कोई सम्बन्ध नहीं है तो हम कहेंगे कि एक के सम्बन्ध का दूसरे में निषेध किया जा रहा है जो सर्वथा अनुचित और न्याय विरुद्ध है।

इसके साथ लगे हाथ यह भी विचार कर लेना चाहिये कि खरगोश के सींग क्यों असम्भव हैं और ईश्वर की सत्ता क्यों असम्भव नहीं है ? बात यह है कि खरगोश के सींग तो होते ही नहीं अतः जो वस्तु स्वरूप से ही नहीं है उसका दिखाई न देना उसके असम्भव होने के कारण ही हो सकता है परन्तु ईश्वर का दिखाई न देना ईश्वर के असम्भव होने के कारण नहीं अपितु ईश्वर तो स्वरूप से ही अदृश्य स्वभाव है और जो वस्तु स्वरूप से अदृश्य हो वह किसी भी प्रकार दिखाई नहीं दे सकती जैसा कि हम पहिले बतला चुके हैं कि जैसे भूख, प्यास, ईर्षा-द्वेष तथा मन-बुद्धि आदि पदार्थ अपनी सत्ता रखते हैं परन्तु आंखों से दिखाई नहीं दे सकते। जो व्यक्ति ईश्वर की सत्ता का प्रतिषेध करने का साहस करता है, उसको चाहिये कि योग्यानुपलब्धि और अयोग्यानुपलब्धि में भेद करना सीखे। यदि वह योग्य और अयोग्य में भेद नहीं कर सकता तो वह स्वयं अपने आपको धोखा दे रहा है। विचारा जाय तो किसी वस्तु का होना और बात है और उसका दिखाई न देना और बात है। जो वस्तु दिखाई दे सकती है वह योग्य है और जो वस्तु किसी भी प्रकार दिखाई नहीं दे सकती वह अयोग्य है। योग्य आंखों से दिखाई दे सकने वाली वस्तुएं यदि

कारणवशात् दिखाई नहीं देतीं तो यह योग्यों की अनुपलब्धि है और जो वस्तुएं स्वरूप से ही दिखाई देने के योग्य नहीं हैं उनका प्रतीत न होना अयोग्यानुपलब्धि है। वस्तु स्थिति पर विचार करते हुए यह कहा जावेगा कि शश, मृग, शृंग, पाद और नगर, ग्राम आदि पदार्थ किसी काल में दिखाई नहीं देते तो किसी अन्य काल में अवश्य दिखाई दे सकते हैं, परन्तु भूख, प्यास, वायु, मन-बुद्धि तथा आत्मा-परमात्मा होते हुए भी किसी भी प्रकार दिखाई नहीं दे सकते। कितने शोक की बात है कि ईश्वर जैसे गहन तत्व पर विचार करने वाले व्यक्तियों को प्रकृति के स्वरूप और उसके नियमों का भी जब यथार्थ ज्ञान नहीं है और भाव अभाव में भी विवेक नहीं कर सकते तो वह ईश्वर के स्वरूप का ठीक ठीक निर्णय कैसे कर सकते हैं तत्वज्ञान के अभिलाषी को सदा यह स्मरण रखना चाहिये कि साकार पदार्थों के नियम निराकार पदार्थों पर कभी लागू नहीं हो सकते।

जो लोग यह कहते हैं कि संसार में साकार ही पदार्थ हैं निराकार पदार्थ एक भी नहीं उनको समझना चाहिये कि सैंकड़ों पदार्थ ऐसे हैं जो सर्वथा आकार रहित अर्थात् निराकार हैं, निराकार पदार्थों की सिद्धि के लिये हम "वायु" का उदाहरण दे सकते हैं क्योंकि वायु एक

ऐसी वस्तु है जिसकी सत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता और वह आकार रहित भी हैं। मोटरों, साईकलों के पहियों में और फुटबाल, वाली-बाल आदि में वायु का सफलता पूर्वक प्रयोग किया जाता है तथा श्वास-प्रश्वास के द्वारा प्राणियों का जीवन धारण भी वायु के कारण ही होता है, बादलों का स्थानान्तर ले जाना तथा वेग से आंधी आकर वृक्षों और छपरों को गिराना तथा सुगन्ध-दुर्गन्ध का कहीं का कहीं पहुंचाना इत्यादि काम सब 'वायु' ही के हैं। जो व्यक्ति इतने कामों के कारण को नहीं मानता वह जिज्ञासु नहीं कहा जासकता। जब वायु की सत्ता स्वीकार किये बिना नहीं बनता तो वायु के आकार का प्रश्न होना स्वाभाविक है। पूछना होगा कि वायु का क्या रूप है ? उत्तर देना होगा कि कोई रूप नहीं। किसी रूप का न होना ही आकार रहित होना अथवा निराकार होना है। वायु निराकार स्वरूप है उसको कोई व्यक्ति साकार नहीं कह सकता जैसा कि सभी दर्शनकार स्वीकार करते हैं और उपनिषद्कार भी जहां तहां विचार करके इसी की पुष्टि करते हैं–

तदमूर्त्तम् यद्वायुश्चाकाशश्च ॥

वृहदारण्यकोपनिषद

अर्थात् वायु और आकाश अमूर्त निराकार हैं। इस

प्रकार निराकार पदार्थों की सिद्धि करके अथवा भूख-प्यास आदि पूर्व वर्णित वस्तुओं का उदाहरण देकर साकारवादी को निराकार पदार्थों की सत्ता स्वीकार कराई जानी चाहिये। निराकार की सिद्धि होते ही प्रत्यक्ष-वाद का दुर्गन्धी दुर्ग धड़ाम से गिर पड़ेगा। इसके बाद किसी भी विचारशील व्यक्ति को यह कहने का साहस नहीं हो सकेगा कि ईश्वर यदि होता तो अवश्य दिखाई देता। क्योंकि उसको यह ज्ञान हो चुका है कि सैंकड़ों वस्तुएं होती हुई भी दिखाई नहीं देतीं।

कई लोग यह कहा करते हैं कि हम तो उसी वस्तु को मानते हैं जिसको हम आंखों से देख लें, जो हमने देखा नहीं उसकी सत्ता ही नहीं है। इस प्रकार का विचार रखने वाले व्यक्तियों से पूछा जाना चाहिये कि क्यों जी, आपने अपनी गर्दन देखी है? क्या आपने अपने दान्तों को आंखों से देखा है? क्या आपने अपनी आंखों से अपना सिर देखा है? यदि कहा जावे कि देखा है—तो यह सर्वथा झूठ है, क्योंकि अपनी आंखों से अपना सिर, दान्त और गर्दन का देखना सर्वथा असम्भव है और अपने प्रत्यक्ष का विषय ही नहीं। हां! दर्पण आदि में प्रतिबिम्ब अवश्य देखा जा सकता है, परन्तु दर्पण आदि में प्रतिबिम्ब को देखकर निश्चय करना कि मेरा सिर है, मेरे दान्त हैं, मेरी

गर्दन है, प्रत्यक्ष नहीं किन्तु अनुमान है, यदि कहा जावे कि नहीं देखा है तो क्यों नहीं अपने आपको बिना सिर और बिना गर्दन का स्वीकार करते ? इसी प्रकार यदि अपनी आंखों देखा ही मानते हो, बिना देखा नहीं मानते तो ऐसा मानने से और भी बहुत सी आपत्तियें आयेंगी जिन से पीछा छुड़ाना बहुत कठिन हो जायगा, जैसे माता के पेट में शरीर बनना, गर्भाशय से बाहर आना तथा पृथ्वी का भ्रमण करना आदि ऐसी बातें हैं जिन को हर एक बुद्धिमान् स्वीकार करता है, परन्तु कोई भी प्रत्यक्षवादी या Materialist अपनी छाती पर हाथ रख कर यह नहीं कह सकता कि उसने माता के पेट में अपने शरीर की आधारशिला रखने का दृश्य देखा है या अमुक व्यक्ति ही उसका पिता है—इस बात की सिद्धि कर सकता है अथवा पृथ्वी को सूर्य्य के चारों ओर विशेष गति से नियमपूर्वक भ्रमण करते देखा है। सच तो यह है कि इन दृश्यों को न तो किसी ने देखा है और न कोई देख सकता है, कारण यह है कि जिन आंखों से देखा जाता है वह तो शरीर रचना के समय अभी तक बनी भी नहीं होतीं फिर देखा कैसे जा सकता है ? गर्भाशय से बाहर आने का दृश्य भी इसीलिये नहीं दिखाई दे सकता कि बाहर आते समय आंखें बन्द होती हैं और उन पर जरायु का परदा पड़ा होता है। पृथ्वी के भ्रमण को इसलिये नहीं देखा जा सकता कि

आंखों में इतनी शक्ति ही नहीं कि १५ सहस्र मील परिधि वाली पृथ्वी की गति को देख सकें। जब तक हम पृथ्वी से उठ कर कम से कम १५ हज़ार मील की दूरी पर न चले जावें तब तक हमारी आंखें पृथ्वी भ्रमण को किसी प्रकार नहीं देख सकतीं। और १५ हज़ार मील पृथ्वी से ऊपर जाना तभी सम्भव हो सकता है जब पृथ्वी के आकर्षण नियम को तोड़ने का पुरुषार्थ किया जावे, परन्तु भौतिक विज्ञान Science अपनी सारी आयोजनाओं का परीक्षण करके इस परिणाम पर पहुंचा है कि महान् से महान् शक्तिशाली यन्त्रों की सहायता से भी हम पृथ्वी से ऊपर इतनी दूरी पर नहीं पहुंच सकते और ना ही प्राणवायु Oxygen के अभाव से जीवित रह सकते हैं-देखने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

जब वस्तुस्थिति इस प्रकार है तो अपनी आंखों से ही देखने पर आग्रह करना-विशेषतः न दिखाई दे सकने वाली वस्तुओं की सत्ता के विषय में-कोई बुद्धिमानी की बात नहीं कही जा सकती।

वादोद्धार पर इतना विचार कर चुकने के पश्चात् अब हम यह कहेंगे कि ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण बाधक नहीं किन्तु साधक है। कैसे साधक है? साधक इस प्रकार है देखिये-

ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण साधक है

"प्रत्यक्ष" शब्द भारतीय दर्शन शास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। शास्त्रों में अनेक प्रकार से इसकी व्याख्या की गई है और इस बात पर सभी एकमत हैं कि आन्तरिक और बाह्य भेद से प्रत्यक्ष दो प्रकार का है। बाह्य प्रत्यक्ष, बाह्य करणों (ज्ञानेन्द्रियों) से सम्बन्ध रखता है और आन्तरिक प्रत्यक्ष, अन्तः करणों (मन, बुद्धि चित्त, अहंकार) से सम्बन्ध रखता है। बाह्यज्ञान के कारण ज्ञानेन्द्रियें पांच हैं इसलिये बाह्यप्रत्यक्ष भी पांच प्रकार का है। आंखों से देखने का नाम-चाक्षुष प्रत्यक्ष है। कानों से सुनने का नाम श्रावण प्रत्यक्ष है। नाक से सूंघने का नाम घ्राणज प्रत्यक्ष है। जिह्वा (रसना) से चखने का नाम रासन प्रत्यक्ष है। त्वचा से स्पर्श करने का नाम स्पार्शन प्रत्यक्ष है। इस प्रकार पांचों ज्ञानेन्द्रियों से हम पांच प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान लाभ करते हैं और देखने, सुनने, सूंघने, चखने तथा छूने से भिन्न २ प्रकार की अनेकों वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

जो लोग केवल चक्षु से देखने को ही प्रत्यक्ष कहा करते हैं उनको चाहिये कि अपना भ्रम संशोधन करलें और यह जान रखें कि चक्षु से देखने मात्र का नाम ही

प्रत्यक्ष नहीं है अपितु कान से सुनना, जिह्वा से चखना, त्वचा से छूना तथा नासिका से सूंघने का नाम भी प्रत्यक्ष है क्योंकि संसार के सब पदार्थों की सिद्धी केवल आंख द्वारा ही नहीं होती कान या नाक से भी हो सकती है। अथवा त्वचा या जिह्वा से भी होती है। इसके साथ ही आन्तरिक प्रत्यक्ष का ज्ञान होना भी अत्यन्त आवश्यक है और जब तक इसका परिज्ञान न हो, प्रत्यक्ष विषयक ज्ञान सर्वथा अधूरा ही कहा जावेगा। जैसे बाह्य पदार्थों के जानने के साधन चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियें हैं वैसे ही अन्दर के पदार्थों के जानने के लिये अन्दर के साधन हैं। जैसे मन के द्वारा सुख दुःख का ज्ञान होना। निद्रा में सुख दुःख, राग द्वेष आदि का ज्ञान सभी प्राणियों को नहीं होता है। इसलिये न तो सुख दुःख आदि की ही सत्ता से इन्कार किया जा सकता है और ना ही मन की सत्ता से ही, जो कि सुख दुःख आदि के ज्ञान का कारण है।

जिन लोगों ने मन को शुद्ध किया है और उसको शुभ संकल्प वाला बनाया है उन्हों ने साक्षी दी है कि समाधि में न केवल आत्मा का अपितु परमात्मा का भी प्रत्यक्ष होता है। यह प्रत्यक्ष देखने आदि के समान इन्द्रिय जन्य ज्ञान नहीं है। यह तो सुख दुःख आदि के अनुभव के समान मानसिक अनुभूति है। इस अनुभव की

यथार्थता भी वैसी ही युक्ति युक्त तथा सत्यता पूर्ण है जैसी कि देखने सुनने आदि की यथार्थता। भेद इतना है कि एक बाह्य साधन से बाह्य विषयों का बाह्य प्रत्यक्ष है और दूसरा अन्दर के साधन से आन्तरिक विषयों का अन्तः प्रत्यक्ष है। दोनों के साधन, विषय, ज्ञान और नाम पृथक् २ हैं इसलिये हम डंके की चोट से कहेंगे कि ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण भी है और वह प्रत्यक्ष, 'मानस प्रत्यक्ष' है। सहस्रों ऋषि-मुनि और योगी जन हो गये हैं जिन्होंने ध्यानावस्थित हो कर ब्रह्म का साक्षात्कार किया है। उन महानुभावों का ईश्वर दर्शन करना प्रवञ्चना और प्रतारणा नहीं कहा जा सकता, ना ही छल या कपट कहा जा सकता है। धोखा या ठगी तो वहां कही जानी चाहिये जहां अनुभव में यथार्थता न हो परन्तु ईश्वर के साक्षात्कार के विषय में तो इतनी यथार्थता है कि जिस २ ने भी ध्यान का ठीक २ अभ्यास किया है उस २ ने ही ईश्वर विषयक अनुभव की साक्षी दी है। यदि संसार के बाह्य स्थूल पदार्थों का पता देने वाले सच्चे कहे जा सकते हैं तो अन्दर के सूक्ष्म पदार्थों का पता देने वाले क्योंकर मिथ्यावादी कहे जावें ? अत अन्तः प्रत्यक्ष द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार करने वालों को मिथ्यावादी कहना सर्वथा अन्याय *Quite Illogical* है।

यजुर्वेदीय तैत्तिरीय उपनिषद् में स्पष्ट कहा है कि—

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि।

तू प्रत्यक्ष ब्रह्म है। तुझको ही मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा। ठीक२ कहूंगा। सत्य कहूंगा। तात्पर्य यह है कि ब्रह्म को प्रत्यक्ष कहना सर्वथा सत्य है ऐसा कहने में झूठ और धोके का लेश तक भी नहीं है।

वेदान्त शास्त्र और उपनिषदों के आचार्यों ने ईश्वर के प्रत्यक्ष करने को "निदिध्यासन" का नाम दिया है और स्थान २ पर कहा है कि—

दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥

कठोपनिषद्॥

सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले लोग ही अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि से उस परमात्मा को देखते हैं। (बुद्धि से देखना और चीज़ तथा आंखों से देखना और बात है)

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्॥

श्वेताश्वतर उपनिषद्।

उन्हों ने ध्यानयोग में समाधिस्थ हो ब्रह्म का साक्षात्कार किया।

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः ॥

मुण्डकोपनिषद् ।

इस सूक्ष्म आत्मा को चित्त (शुद्धमन) से प्राप्त करना चाहिये ।

मनसैवेदमाप्तव्यम् ॥

कठोपनिषद् ।

मन से ही ईश्वर को जाना जा सकता है । इत्यादि । ऐसे ऐसे अनेकों श्रुति-वाक्य हैं जिन से आन्तरिक प्रत्यक्ष द्वारा ईश्वर का अनुभव होना सिद्ध होता है ।

तेजो यत्येरूपम् कल्याणतमम् तत्तेपश्यामि ॥

ईश ।

उस तेजवान और कल्याण स्वरूप, रूप को मैं देखता हूं प्राचीन काल के गौतम और व्यास जैसे युक्ति निपुण विद्वान अपने वक्तव्यों में स्पष्ट कह गए हैं कि ईश्वर जैसे बहुत से रूपरहित और इन्द्रियातीत पदार्थ हैं जिन की सत्ता मानस प्रत्यक्ष से सिद्ध होती है, जैसे दृश्य स्वभाव वाली वस्तुओं के अनुभव के लिये चक्षुओं का निरोग होना और कार्य्य-कारी होना आवश्यक है अथवा शब्दों के सुनने के लिये कानों का ठीक होना आवश्यक है, गन्ध वाले पदार्थों के ज्ञान के लिये नासिका का दोष रहित होना आवश्यक है

और रसास्वादन के लिये जिह्वा तथा स्पर्शज्ञान के लिये त्वचा का दोष हीन होना आवश्यक है—वैसे ही निराकार और अमूर्त पदार्थों के अनुभव के लिये मन-बुद्धि का दोष रहित होना अत्यन्त आवश्यक है, किसी वस्तु की प्रतीति न होने के जिस प्रकार इन्द्रिय दोष आदि कारण हैं और दोषों को दूर कर देने से वस्तु की प्रतीति हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा परमात्मा के साक्षात्कार के न होने के दुराचारपरायणता, संशय निमग्नता, अज्ञान और आवरण चंचलता आदि मन के दोष कारण हैं।

यथा तद्दृष्टुः स्वरूपे अवस्थानम् ॥

योग।

ध्यान में निर्विषय हो जाने पर दृष्टा का स्वरूप में अवस्थान होता है। अपतु अपने स्वरूप को देखता है। और इन कारणों के दूर होते ही परमेश्वर का दर्शन (अनुभव) हो जाता है।

तस्य तावदेव चिरम् यावन्न विमोक्ष्ये अथ सम्पत्स्ये

बृहदारण्यकोपनिषद्।

उस को तो तभी तक देरी है जब तक वह दुर्गुणों से पीछा नहीं छुड़ाता, ज्यों हो दुर्गुण छूटे फिर तो दर्शन-सम्पत्ति से मालामाल हो जायगा।

जिन परिश्रमी और साहसिक युवकों ने ईश्वर दर्शन किया है उन्हों ने साक्षी दी है कि ईश्वर का देखना, आंख से देखने की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है तथा मन-बुद्धि की शुद्धि, आंखों आदि की शुद्धि की अपेक्षा कहीं अधिक दुःसाध्य है, आंख आदि इन्द्रियों को निरोग और निर्दोष बनाने के लिये वर्ष दो वर्ष पर्याप्त हो सकते हैं परन्तु मन के दोष दूर करने के लिये एक नहीं सैंकड़ों जन्मों में पुरुषार्थ करते रहने की आवश्यकता है, जैसा कि श्री कृष्ण जी कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।

गीता ।

बहुत जन्मों के पश्चात् जब यथार्थ ज्ञान परिपक्व होता है तो भगवान् को प्राप्त कर सकता है ।

ईश्वर का मानस प्रत्यक्ष करने के लिये जिन साधनों और उपायों की आवश्यकता है तथा जो जो मार्ग में प्रतिबन्धक हैं इन सब का विस्पष्ट विवर्ण उपनिषद्, गीता तथा योगदर्शन आदि वैदिक अध्यात्मिक शास्त्रों में अच्छी तरह किया गया है । जिस किसी भी व्यक्ति को ईश्वर के साक्षात्कार की प्रबल इच्छा हो वह अध्यात्मिक नियमों का दिल लगा कर पालन करे और पुरुषार्थ से ईश्वर का प्रत्यक्ष करले । यह हम पहिले कह चुके हैं कि ईश्वर का

प्रत्यक्ष करना, आंखों से प्रत्यक्ष करने के समान कोई साधारण काम नहीं है। कौन कह सकता है कि मृत्तिका का ढेला उठाने और हीरे को प्राप्त करने में अन्तर नहीं है अन्तर है और महान् अन्तर है। मृत्तिका का ढेला प्राप्त करना कोई बहादुरी का काम नहीं है, परन्तु मोती तथा हीरे जैसी बहुमूल्य वस्तुओं का प्राप्त करना अत्यन्त दुःसाध्य है अपने नगर में ही देख लीजिये कितने लोग हैं जिन के पास हीरा तथा मोती हैं, पहिले तो हज़ारों की आबादी में हीरा अथवा मोती होगा भी, तो किसी एक आधे के पास ही होना सम्भव है। हर एक व्यक्ति हीरा प्राप्त नहीं कर सकता। हीरे तथा मोती का प्राप्त करना कोई हंसी ठट्ठे का खेल नहीं है। हीरा पाने के लिये धन और पुरुषार्थ के साथ हीरे विषयक ज्ञान पहिचान का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी प्रकार ईश्वर प्राप्ति के लिये भी महान् कठोर परिश्रम और इन्द्रिय निग्रह की आवश्यकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ईश्वर तत्त्व का साक्षात्कार करने वाला कोई विरला ही हो सकता है परन्तु होता अवश्य है जो हीरे की सत्ता से इन्कार करता है उसको चाहिये कि जौहरी के पास जाकर अपना समाधान कर ले। इसी प्रकार जो व्यक्ति ईश्वर की सत्ता से इन्कार करता है। उस को चाहिये कि सदाचारी महात्माओं का सत्संग करे और

शास्त्रीय विधि का अनुचरण करता हुआ ईश्वर दर्शन करे। बिना नियमों पर चले, लाखों जन्मों में भी ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। मौलाना रूम ने क्या ही मार्मिक वचन कहा है—

चश्म बन्दो गोश बन्दो लब वबन्द।
गर न बीनी सिर्रे हक़ वरमन बख़न्द॥

मस्नवी रूम।

आंख बन्द कर, कान बन्द कर, और ज़बान बन्द कर। इस पर भी यदि ईश्वर का साक्षात्कार न हो तो मेरी हंसी उड़ा।

यमाचार्य कठोपनिषद् में उपदेश करते हैं कि—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमवाप्नुयात्॥

जो व्यक्ति दुराचार से उपराम नहीं हुआ, जिस ने इन्द्रियों को वश में नहीं किया, जिस की बुद्धि सदा डांवा डोल रहती है और जिस का मन शान्त नहीं हुआ ऐसा व्यक्ति ज्ञान की बातें जान लेने पर भी परमेश्वर को नहीं पा सकता।

ईश्वर प्राप्ति को दार्शनिक व्याख्या Philosophical Explanation इतनी विस्तृत और गहन है कि किसी भी

सच्चे जिज्ञासु की मानसिक तृप्ति के लिये पर्याप्त से भी कहीं अधिक सिद्ध हो सकती है। हमने यहां ईश्वरानुभव विषयक जितना उचित समझा, दिग्दर्शनमात्र जतला दिया है। उपरोक्त वचनों से हमारा उद्देश्य यह है कि ईश्वर प्राप्ति की वैज्ञानिक पद्धति Scientific Classification द्वारा प्रत्यक्ष वादियों का भ्रम संशोधन कर दिया जावे ताकि जिज्ञासुओं को ईश्वर का प्रत्यक्ष हो सके। ईश्वर के प्रत्यक्ष से जिन हज़ारों महात्माओं ने आनन्द लाभ उठाया है उन में से एक प्रत्यक्ष दर्शी का अनुभव इन शब्दों में कहा जा सकता है। महर्षि व्यास योगसूत्रों पर भाष्य करते हुए लिखते हैं कि—

समाधिनिर्धूत मलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत् सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

योगभाष्य।

जिस व्यक्ति ने मन के सम्पूर्ण दोषों का मार्जन करके समाधि प्राप्त करली है, उस व्यक्ति को शुद्ध मन द्वारा समाधि में आत्मतत्व का जो आनन्द अनुभव होता है उस आनन्द का जिह्वा से वर्णन नहीं किया जा सकता।

वह आनन्द तो स्वयं अपने अन्तःकरण से ही ग्रहण किया जा सकता है।

सचमुच "गूंगे के गुड़" वाली बात है। इसी प्रकार ईश्वर प्रत्यक्ष का आनन्द है। आशा है जो सज्जन ईश्वर की सत्ता को प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित मान कर सन्देह सागर में ग़ोते खाते रहते हैं उनका उपरोक्त विचार से समाधान अवश्य हो गया होगा ? यदि न हुआ हो तो दूसरी बार शान्त चित्त से पढ़ें उनको ईश्वर कृपा से अवश्य लाभ होगा।

॥ इति ईश्वर सिद्धौ प्रत्यक्षम् प्रमाणम् ॥

ईश्वर सिद्धि में

अनुमान प्रमाण बाधक नहीं है

प्रायः कहा जाता है कि ईश्वर की सिद्धि में अनुमान प्रमाण बाधक है। जब पूछा जावे कि कैसे बाधक है तो नास्तिकों की ओर से कहा जाता है कि ईश्वर सिद्धि में जब प्रत्यक्ष ही प्रमाण नहीं है तो अनुमान प्रमाण कैसे हो सकता है क्योंकि अनुमान के लिये प्रत्यक्ष पूर्वक होना आवश्यक है। न्याय दर्शन में स्पष्ट कहा है कि (तत्पूर्वकमनुमानम्) अनुमान प्रत्यक्षपूर्वक ही होता है।

हम इस बाध का उद्धार कर सकते हैं और कह सकते हैं कि जब ईश्वर के होने में मानस प्रत्यक्ष (शुद्ध मन के द्वारा अनुभव करना) प्रमाण विद्यमान है तो अनुमान कैसे बाध कर सकता है ? जिस वस्तु की सत्ता प्रत्यक्ष के द्वारा सिद्ध है उसी वस्तु का बाध अनुमान द्वारा कदापि नहीं हो सकता। जैसे कोई कहे कि "आग ठण्डी है, वस्तु होने से, जो भी वस्तु होती है वह ठण्डी ही होती है, जैसे

पानी, इसलिये आग ठण्डी है"। तो यह अनुमान अपने पक्ष को सिद्ध नहीं कर सकेगा। विचार किया जावे तो यह अनुमान प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण से आग गरम सिद्ध होती है। लाख अनुमान, आग को शीतल सिद्ध करने के लिये दिये जावें, परन्तु आग को शीतल सिद्ध नहीं कर सकेंगे। अकेला प्रत्यक्ष प्रमाण (छूने से पता लगाना) आग को गरम सिद्ध करता रहेगा। इसी प्रकार जब ईश्वर की सत्ता प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है तो अनुमान कैसे बाधक हो सकता है? यह सदा स्मरण रखने की बात है कि लाखों प्रबल अनुमानों (अनुमानाभासों) के होते हुए भी योगी प्रत्यक्ष द्वारा अनुभूत ईश्वर-सत्ता का खण्डन नहीं किया जा सकता।

वास्तव में देखा जाय तो प्रत्यक्ष और अनुमान में भारी भेद है और अनुमान का विषय प्रत्यक्ष के विषय से सर्वथा भिन्न है। प्रत्यक्ष में इन्द्रियों का पदार्थ के साथ सीधा सम्बन्ध होता है परन्तु अनुमान में इन्द्रियें वस्तु के साथ साक्षात् सम्बन्ध नहीं रखतीं, इसी लिये वस्तु निश्चय के लिये किसी हेतु की अपेक्षा रखती हैं। जैसे आंखों से आग का देखना प्रत्यक्ष है और धूम को देख कर आग का निश्चय करना अनुमान है। प्रत्यक्ष में हेतु की आवश्यकता नहीं होती परन्तु अनुमान के लिये हेतु

का होना अत्यन्त आवश्यक है। कहा जा सकता है कि जब प्रत्यक्ष से ईश्वर की सत्ता सिद्ध है तो अनुमान से सिद्ध करने की क्या आवश्यकता है? हमारा कहना है कि ईश्वर का प्रत्यक्ष जिन ऋषि मुनियों और महात्माओं को होता है वही ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं, परन्तु जिन लोगों को ईश्वरानुभव नहीं हुआ है उनके लिये ईश्वर विषयक ज्ञान, अनुमान से ही हो सकता है और अनुमान प्रमाण से ईश्वर की सत्ता का निश्चय करके ईश्वर प्राप्ति भी हो सकती है।

ईश्वर सिद्धि में अनुमान प्रमाण का मूल्य समझने के लिये एक व्यापक नियम के समझ लेने की बहुत आवश्यकता है और जब तक इस आवश्यक नियम को नहीं समझ लिया जाता तब तक अनुमान के विषय में यथार्थ परिणाम निकालना आसान नहीं हो सकता। और वह नियम है, "कार्य्यकारणभाव" The Principle of Causality।

श्री उदयनाचार्य जो अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "न्याय कुसुमाञ्जलि" के पांचवें स्तवक में कार्य्यकारणभाव का आश्रय लेते हुए ईश्वर सिद्धि के लिये कुछ प्रभावशाली अनुमानों का उल्लेख करते हैं। पुस्तक की भाषा सर्वसाधारण की पहुंच से बहुत ऊंची है तथा भाव अत्यन्त गम्भीर और महत्वपूर्ण हैं। अतः हमारी इच्छा है कि इस छोटे से

निबन्ध में आचार्य महोदय के भावों का सरल हिंदी भाषा में नवीन तथा उपयोगी ढंग से वर्णन किया जावे जिस से लोगों को संस्कृत के एक अद्भुत दार्शनिक के विचारों से लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त हो सके।

आचार्य कहते हैं कि-

कार्यायोजन धृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः।
वाक्यात् संख्या विशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः॥

न्याय कुसुमाञ्जलि।

अर्थ—कार्य्य, आयोजन, धृति आदि, पद, प्रत्यय, श्रुति, वाक्य तथा संख्या विशेष इन हेतुओं से सर्वज्ञ अविनाशी ईश्वर की सिद्धि करनी चाहिये। अथवा यूं कह लीजिये कि कार्य्य आयोजन आदि उपरोक्त युक्तियों से ऐसा जगत् कर्ता ईश्वर सिद्ध होता है जो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् और नित्य अनादि अनन्त, अजर, अमर, अजन्मा और आनन्द स्वरूप तथा निराकार और सर्वव्यापक है।

आचार्य के आशय को स्पष्ट करने के लिये प्रत्येक युक्ति पर पृथक् पृथक् विचार आरम्भ किया जाता है। आशा है जिज्ञासु पाठक अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे।

कार्यत्व हेतु से ईश्वर का अनुमान
Cosmological Argument

संसार में जितने भी पदार्थ हैं उनको दो प्रकार से विभक्त किया जा सकता है एक कारण Cause दूसरे कार्य्य Effect प्रत्येक वस्तु यातो किसी कार्य्य का कारण होगी या किसी कारण का कार्य्य । दृष्टान्त के लिये 'घड़ा' रख लीजिये । घड़ा एक कार्य्य (बनी हुई वस्तु) है उसके तीन कारण होने आवश्यक हैं उपादान, निमित्त और साधन कारण । जिस वस्तु से घड़ा बनता है वह मृत्तिका घड़े की (Material cause) उपादान कारण है । जो चेतन कर्ता घड़े को मिट्टी से बनाता है वह कुम्हार घड़े का निमित्त कारण (Efficient cause) है । जिस साधन से कुम्हार घड़ा बनाता है वह दण्ड चक्रादि साधन घड़े के (Instrumental cause) साधन कारण हैं । कोई भी कार्य्य हो उसके ये तीन कारण अवश्य होंगे अथवा जब तक तीन कारण न हों तब तक किसी भी कार्य्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती । घड़े की उत्पत्ति के लिये जहां मिट्टी की आवश्यकता है वहां कुम्हार की भी आवश्यकता है क्योंकि अकेली मिट्टी यदि लाख साल तक भी पड़ी रहे तो भी बिना कुम्हार के घड़ा नहीं बन सकता । घड़ा बनने के लिये जितनी आवश्यकता मिट्टी की है उससे कहीं अधिक

कुम्हार की आवश्यकता है। अकेला कुम्हार भी घड़ा नहीं बना सकता जब तक उसके पास मिट्टी न हो। इसी प्रकार न केवल मिट्टी और कुम्हार की सत्ता ही घड़े के लिये आवश्यक है अपितु दण्ड चक्र आदि साधनों का होना भी आवश्यक है क्योंकि दण्ड से जब चक्र को चलाया जावे और उस पर रख कर मिट्टी के पिण्ड को विशेष प्रकार से बनाया जावे तभी घड़ा बनता है इसी लिये मिट्टी के पास होते हुए भी कुम्हार बिना साधन के घड़ा नहीं बना सकता ऐसे ही मकान, मेज़, पुस्तक, वस्त्र आदि सभी कार्यों के लिये इन तीन कारणों का होना आवश्यक है।

इस नियम के अनुसार यह कहना पड़ता है कि जो भी कार्य्य होता है उसके तीन कारण अवश्य होते हैं। पृथ्वी-नक्षत्र आदि भी कार्य्य हैं अतः इनके भी तीन कारण अवश्य होने चाहियें। जगत् का उपादान कारण परमाणु हैं अतः इस निबन्ध में उपादान विषयक विचार न उठा कर निमित्त कारण विषयक विवेचन करना है। इसलिये हम कहेंगे कि पृथ्वी और नक्षत्रादि का निमित्त कारण अर्थात् रचना करने वाला कोई कर्ता अवश्य होना चाहिये। वह कर्ता मनुष्य नहीं हो सकता और ना संसार भर के मनुष्य ही मिल कर जगत् की रचना कर सकते हैं अतः जिस किसी ने भी संसार को रचा है वही जगत् का कर्ता

ईश्वर है। यदि ईश्वर न होता तो जगत् की रचना भी न होती, परन्तु रचना है और बड़ी भारी बुद्धिमत्ता से रचना हुई है अतः अवश्यमेव ईश्वर है।

कार्य्य को देख कर उसके कर्ता का अनुमान करना अस्वाभाविक नहीं है। प्रत्येक मनुष्य जब किसी कार्य्य को देखता है तो स्वभावतः उसके मन में कर्ता विषयक प्रश्न उत्पन्न हो उठता है। यदि किसी भी कार्य्य के लिये किसी कर्ता का होना आवश्यक न होता तो मनुष्य में कर्ता को जानने की उत्सुकता न पाई जाती और वह किसी भी अद्भुत कार्य्य को देख कर यह पूछने का आग्रह न करता कि इसको किसने बनाया है, इसका बनाने वाला कौन है इत्यादि। यदि उत्तर 'हां' में मिलता है तो कार्य्य के कर्ता को भरपूर प्रशंसा की जाती है और रचयिता के दर्शनों की लालसा पैदा हो उठती है। मानसिक प्रवृत्ति का यह विश्लेषण ईश्वर के जगत्कर्ता होने की सूचना देता है। इसीलिये सृष्टि की अद्भुत रचना को देख कर स्वभावतः प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस कलामय जगत् को किस कलाकार ने दिल लगा कर रचा है। जिस किसी ने भी रचा है वह बड़ा बुद्धिमान् प्रतीत होता है। जो चाहता है कि उसके दर्शन करें।

कई लोग कर्य्यकारणभाव के लिये अनेक कारणवाद को स्वीकार न करते हुए यह कहा करते हैं कि एक ही वस्तु कार्य्य तथा कारणरूप हो सकती है इसलिये अनेक कारणों से कार्य्य की उत्पत्ति मानना सर्वथा गौरवदोष दूषित है और जगत् रूप कार्य्य के लिये किसी ईश्वर को कर्ता मानने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार का प्रतिबन्ध लगाने वालों में अद्वैतवादी वेदान्तियों का स्थान सब से आगे है। नवीन वेदान्ती कहते हैं कि एक ब्रह्म ही तत्व है। वही जगत् रूप होकर जड़ चेतन कहलाता है उससे भिन्न जीव या प्रकृति नामक कोई पदार्थ नहीं है। इसी प्रकार प्रकृति वादि प्रकृति के लिये भी कहते हैं।

वास्तव में 'एककारणवाद' ईश्वरवाद के मार्ग में सब से बड़ा कण्टक है जिसको चूर्ण-विचूर्ण किये बिना ईश्वर का कर्तृत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता इसीलिये चाहे यह अनीश्वरवाद-वेदान्तियों द्वारा परिपुष्ट किया जावे चाहे प्रकृतिवादियों द्वारा, ईश्वरवाद का समर्थक होने के नाते प्रत्येक ईश्वरवादी का कर्तव्य हो जाता है कि इस प्रबल प्रतिबन्ध को छिन्न भिन्न करके आगे बढ़ें। अतः इस मत के मूल पर प्रहार करने के लिये हम महा नैय्यायिक, तार्किक केसरी, श्रीमान् उदयनाचार्य जी की निर्भय शरण में जाते हैं। आचार्य महोदय ने लोकोत्तर युक्तियों से

स्वनिर्मित कई ग्रन्थों में इस मत पर विचार किया है। यहां उन सब युक्तियों का संग्रह न करते हुए एक वज्र युक्ति देना ही पर्याप्त होगा। जिस से प्रत्येक विचार शील जिज्ञासु को निश्चय हो जायगा कि एक वस्तु में (चाहे वह ब्रह्म ही क्यों न हो) कार्य्य कारण भाव कभीं नहीं हो सकता और इसी लिये संसार की व्याख्या के लिये एक वस्तु सर्वथा अपर्याप्त है।

न्याय कुसुमाञ्जलि के प्रथम स्तवक में श्री उदयनाचार्य लिखते हैं कि–

एकस्य न क्रमः क्वापि वैचित्र्यं च समस्य न
शक्तिभेदो न चाभिन्नः स्वभावो दुरतिक्रमः ॥

संसार में कहीं भी एक वस्तु में कार्य्यकारणभाव का क्रम देखने में नहीं आता। एक वस्तु ही किसी कार्य्य का कारण होकर उसको उत्पन्न कर दे इसकी पुष्टि के लिये संसार में एक भी दृष्टान्त नहीं मिल सकता है। यदि कहा जावे कि एक ही बीज से अंकुर, शाखा, पत्र, पुष्प, फल, और लकड़ी आदि अनेक कार्य्य उत्पन्न हो जाते हैं तो हम कहेंगे कि कारण एक नहीं है किन्तु अनेक हैं। पहले तो बीज को 'एक' कहना ही भूल है क्योंकि बीज अनेक परमाणुओं का संघात है जिसमें कुछ परमाणु फल

के कारण हैं, कुछ फूलों के कारण हैं, कुछ परमाणु लकड़ी के कारण हैं। दूसरी बात यह है कि केवल बीज ही इतनी कार्य्य सामग्री का कारण नहीं है किन्तु पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, दिशा, काल तथा बीज बोने वाला कर्ता और हल, बैल, खाद आदि अनेक कारण हैं क्योंकि जब तक ये कारण न हों तब तक बीज से सैंकड़ों पुष्प और हज़ारों पत्र तथा लम्बी चौड़ी लकड़ियें कदापि नहीं निकल सकतीं। अनुभव प्रमाण है कि यदि सैंकड़ों वर्ष किसी कोठे में बीज बन्द पड़ा रहे और उसको जलआदि अन्य सहायक कारण न मिलें तो उस बीज से कोई भी कार्य्य नहीं निकलता। जब कोई चेतन बीज को मकान से निकाल कर अनुकूल ऋतु में पृथ्वी में डालता है और समयानुसार जल से सिंचन करता है तथा सूर्य्य की गरमी उचित मात्रा में प्राप्त होती है तथा चन्द्रमा की किरणों से रस मिलता है तो तब ही वह बीज पत्र पुष्पादि अनेक कार्य्यों को उत्पन्न कर सकता है अन्यथा एक रत्ती भर परिमाण के बीज से सेरों फल और मनों लकड़ी कैसे निकल सकती है? अतः बीज से भिन्न पृथ्वी और जलादि को कारण माने बिना पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता।

यदि कहा जावे कि हमारे पास दीपक का दृष्टान्त है। एक ही दीपक अनेक कार्य्यों का कारण है जैसे बत्ती

को जला कर भस्म करना, अंधकार को नष्ट करना, प्रकाश का विस्तार करना तथा तेल का रूपान्तर करना और वायु को गरम करना। दीपक एक है और वह अनेक कार्यों का कारण है। इसी प्रकार एक ही ब्रह्म या प्रकृति अनेक विध जगत् की रचना का कार्य्य हो सकता है तो यह कहना भी ठीक नहीं। क्यों ठीक नहीं है? सुनिये! पहिले तो दीपक को एक कहना ही भ्रान्ति है क्योंकि मृत्तिका अथवा धातु का बना हुआ पात्र, तेल, बत्ती और अग्नि—कम से कम यह चार चीज़ों का नियम पूर्वक संघात हो तो उसको कार्य्यकारी दीपक कह सकेंगे। इन में से एक भी चीज़ कम हो तो दीपक किसी भी उपरोक्त कार्य्य का कारण नहीं हो सकता अतः यदि एक दीपक अनेक कार्य्यों का कारण माना जाय तो कहना होगा कि कारण एक नहीं किन्तु अनेक हैं। दूसरी बात यह है कि अंधकार को नष्ट करने के लिये दीपक से पृथक् अन्धकार की सत्ता स्वीकार करनी होगी। प्रकाश को फैलाने के लिये आकाश की आवश्यकता बनी रहेगी और आकाश को प्रकाश से पृथक् तथा उसका आधार या सहायक स्वीकार करना होगा क्योंकि यदि दीपक से भिन्न आकाश की सत्ता न हो तो प्रकाश स्थानाभाव के कारण कभी भी फैल न सकेगा। इसी प्रकार बत्ती और तेल यदि न हों तो रूपान्तर विकार

किस का माना जायगा। इसके साथ ही दीपक जलाने वाला भी और उसको नियम पूर्वक तेल बत्ती आदि रखने वाला कोई अवश्य मानना होगा क्योंकि दीपक को जलाने वाला न हो तो दीपक तीन काल में भी कभी अपने आप नहीं जल सकता। अतः अनेक कार्य्यों का एक कारण कभी नहीं हो सकता। किन्तु अनेक कारणों से ही कार्य्य की उत्पत्ति होती है और यही सिद्धान्त ठीक है।

यदि कहा जावे कि हमारा अभिमत कारण (ब्रह्म) विचित्र विचित्र शक्तियों वाला है। ब्रह्म में अनेकों शक्तियें हैं जिससे वह एक होता हुआ भी जगत् के अनेकों कार्य्यों का कारण हो सकता है तो हम कहेंगे कि शक्तियें ब्रह्म से भिन्न हैं या अभिन्न। यदि शक्तियें भिन्न हैं तो स्वतएव अद्वैतवाद टूट गया क्योंकि एक तो ब्रह्म, दूसरे ब्रह्म से भिन्न अनेक शक्तियें। यह अनेक कारण मिल कर ही किसी कार्य्य को उत्पन्न कर सकेंगे। अतः अनेक पदार्थ सिद्ध होने से एक ब्रह्मवाद का सिद्धान्त जाता रहा और सिद्धान्त हानि भी होगई। यदि इस भयंकर गर्त से बचने के लिये यह स्वीकार किया जावे कि शक्तियें ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं। तो ऐसा मानने से यह दोष होगा कि 'ब्रह्म और शक्तियें' इन दो वस्तु और नाम निर्देशों का कारण नहीं बता सकोगे। जब ब्रह्म से शक्ति नामक अनेक पदार्थ भिन्न नहीं

हैं तो यह कैसे कहा जा सकता है कि ब्रह्म में अनेकों शक्तियें हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म शक्तियें नहीं और शक्तियें ब्रह्म नहीं किन्तु ब्रह्म नामक एक पदार्थ है। उसमें शक्ति नाम के अनेक पदार्थ हैं। इस प्रकार ब्रह्म और शक्तियों में आधाराधेयभाव मानने से अद्वैतवाद पर फर चोट पड़ती है। और फिर यह भी बताना होगा कि यह ब्रह्म है और इस में यह अमुक शक्ति है तथा यह अमुक शक्ति है और यह अमुक शक्ति है यह स्पष्ट भेद व्यवहार एक कारणवाद को कैसे सिद्ध करेगा। जब शक्ति शक्ति में भेद है और एक शक्ति से दूसरी शक्ति भिन्न है तो इन अनेक शक्तियों के भेद का आश्रय अवश्य शक्तियों से भिन्न ही सिद्ध होगा। इसके साथ ही यह भी बताना होगा कि शक्ति द्रव्य है या गुण? यदि द्रव्य है तो ब्रह्म से अतिरिक्त दूसरा पदार्थ सिद्ध हो गया और शक्तियों के अनेक होने से अनेक कारणवाद ही पुष्ट हुआ। यदि शक्ति को गुण माना जाय तो गुणों से जगत् के असंख्य द्रव्यों की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी, परन्तु द्रव्य हैं अतः यही मानना ठीक होगा कि द्रव्यों से द्रव्य की उत्पत्ति हुई है। इस से भी यही सिद्ध हुआ कि ब्रह्म से अतिरिक्त अनेक पदार्थ हैं और वही जगत् के कारण हैं। यदि कहा जावे कि हम कुछ नहीं कह सकते कि शक्तियें ब्रह्म से भिन्न हैं या अभिन्न अथवा

द्रव्य हैं या गुण, एक हैं या अनेक। तो इस अनिर्वचनीय-वाद का मतवादी दार्शनिक कोटि से नीचे गिरता है। यदि कोई मतवादी अपने मत को दार्शनिक विद्वानों से स्वीकार कराना चाहे तो उसका कर्तव्य है कि वह विश्लेषणात्मक युक्तियों से तत्त्वों का व्याख्यान करे। यदि वह ऐसा कर सके तो निश्चय से वह दार्शनिक कहा जा सकता है परन्तु यदि वह निर्णय न कर सके तो वह न लौकिक ही कहला सकता है ना ही परीक्षक। अतएव वह दार्शनिक कोटि में बैठने का अधिकारी नहीं है।

यदि कहा जावे कि ब्रह्म का स्वभाव है कि वह एक होता हुआ भी अनेक प्रकार के कार्य्यों का कारण बन सके तो इस स्वभाववाद से भी एक कारणवाद सिद्ध नहीं हो सकता। स्वभाव के लिये नियम है कि वह भावद्रव्य-भावी हुआ करता है अर्थात् जब तक द्रव्य की सत्ता हो तब तक उसका स्वभाव भी रहता है। यदि ब्रह्म का ऐसा स्वभाव है तो जगत के पदार्थों में वह स्वभाव अवश्य होना चाहिये और प्रत्येक कार्य्य एक ही कारण से उतपन्न हो जाना चाहिये परन्तु शोक है कि यह स्वभाव जगत् के किसी भी कार्य्य में देखने को नहीं मिलता क्योंकि जगत् के जितने भी कार्य्य हैं उनकी उत्पत्ति कई कारणों से ही सम्बन्ध रखती है। अतः यह प्रश्न बड़े महत्व का है कि

ब्रह्म का यह स्वभाव (एक कारण से अनेक कार्य्य उत्पन्न होना) आज क्यों नष्ट हो गया। यह सर्वथा असिद्ध है कि वस्तु ब्रह्म तो है परन्तु उसका स्वभाव नष्ट हो चुका है। यदि दुराग्रह ही किया जावे और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध यही रट लगाई जावे कि एक ब्रह्म से अतिरिक्त और कुछ नहीं तो यह कोरा हठ है। इससे न तो जिज्ञासा पूर्ण हो सकती है और न ही शान्ति मिल सकती है। और ना कोई वस्तु ही बन सकती है।

अतः यही प्रमाणसिद्ध और प्राचीन सिद्धांत है कि अनेक कारणों से कार्य्य की उत्पत्ति होती है तथा प्रत्येक कार्य्य के उपादान कारण, निमित्त कारण तथा साधन कारण कम से कम यह तीन मुख्य कारण अवश्य होते हैं। इनमें से किसी एक की भी कमी हो तो कार्य्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिये हम कहेंगे कि जगत् के पृथ्वी सूर्य्य, चन्द्र और नक्षत्रादि परिवर्तनशील कार्य्य पदार्थों को उत्पन्न करने के लिये किसी बुद्धिमान् चेतन कर्त्ता निमित्त कारण की आवश्यकता है जो प्रकृति के परमाणुओं को कार्य्य रूप में तथा योग्य संगठित करके आकार दे सके। वह चेतन ईश्वर ही हो सकता है क्योंकि जीव अल्पज्ञ अत्यन्त स्वल्प शक्ति वाले होने के कारण जगत् की रचना में सर्वथा असमर्थ हैं अतः जीवों से इस अलौकिक कार्य्य

के कर सकने की तो स्वप्न में भी आशा नहीं की जा सकती और परमाणुओं के उपादान कारण होने से बिना चेतन के योग के अपने आप जगत् रचना असम्भव है।

इस प्रकार कार्य्यत्व हेतु से ईश्वर के जगत् कर्त्ता होने का अनुमान किया जाना सर्वथा न्याय और युक्ति संगत है इस अनुमान को अधिक युक्ति युक्त और सुसंगत बनाने के लिये अनीश्वरवादी जैन, बौद्ध, चार्वाक आदि—के आक्षेपों का समाधान करना अत्यन्त आवश्यक है। अतः अब हम कुछ उनके आक्षेपों पर विचार करते हैं जिस से जिज्ञासु सज्जनों का दृढ़ निश्चय हो सके कि कार्य्यत्व हेतु से ईश्वर का अनुमान सर्वथा दोष रहित है।

चार्वाक कहते हैं कि जगत् को घड़े आदि के समान कार्य्य मान कर कर्त्ता का प्रश्न उठाना अनुचित है क्योंकि जगत् घड़े आदि के समान कार्य्य नहीं है अपितु कांटे के समान है। कांटे को न तो किसी ने बनाते देखा है और न ही किसी को सान पर तीक्ष्ण करते देखा है। इसलिये जैसे कांटे की उत्पत्ति और तीक्ष्णता आकस्मिक Bychance है, वैसे ही जगत् की उत्पत्ति भी आकस्मिक है जगत् का कोई कर्त्ता मानने की आवश्यकता नहीं है।

पक्ष को उदाहरण बना कर कोई परिणाम निकालना तर्क शास्त्र में बड़ी भारी भूल माना गया है। हमने जगत्

को सामने रख कर अनुमान किया है कि इस जगत् का कोई कर्ता अवश्य है। कांटे, कांटों की तीक्ष्णता तथा कांटों की बनावट, कांटों का आधार शाखायें, शाखाओं के पत्र-पुष्प-फल आदि समूचा वृक्ष और वृक्षों का बन और बन सहित पर्वत और पर्वतों सहित सारी पृथ्वी और पृथ्वी सहित सूर्य्य मण्डल तथा सूर्य्य मण्डल के सहित सम्पूर्ण जगत् यह सब हमारे पक्ष अर्थात् प्रतिज्ञा के अन्तर्गत हैं इसमें किसी वस्तु को दृष्टान्त बना कर दोष नहीं दिया जा सकता। कांटे की नोक से लेकर अनन्त नक्षत्रों तक सम्पूर्ण जगत् अद्भुत रचना चातुरी से रचा हुआ मालूम पड़ता है। इस ब्रह्मण्ड की रचना का अध्ययन करने के लिये बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने Science की अनेकों शाखाओं पर विस्तृत व्याख्यायें करके पुस्तकें लिखी तथा अनेकों यन्त्र बनाये और फिर भी हार कर यही कह गये कि संसार की रचना का पूरा२ ज्ञान प्राप्त करना मानवी शक्ति से परे की बात है।

साइन्स की प्रत्येक शाखा, जगत् की व्याख्या में एक प्रयत्न मात्र है। इन प्रयत्नों से जगत् के किसी बुद्धिमान् कर्ता का अनुमान होना सर्वथा स्वाभाविक है। जब हम किसी भी कार्य्य को देखते हैं तो उस कार्य्य में कुछ 'धर्म' या 'गुण' ऐसे पाते हैं जो कार्य्य को उत्पत्ति से पूर्व

उपादान कारण में नहीं होते किन्तु वह गुण कर्ता की इच्छा और प्रयत्न से उसमें आते हैं। जैसे मेज़ या कुर्सी एक कार्य्य है मेज़ या कुर्सी में एक विशेष प्रकार की बनावट है। यह बनावट मेज़ या कुर्सी के उपादान वृक्ष में नहीं थी किन्तु बढ़ई ने वृक्ष को कांट छांट कर और अनेक अस्त्रों से विशेष प्रकार का बना बना कर उसमें डाली। ऐसे ही हलवाई ने मैदे और घी में न होने वाले कई गुणों को डाल डाल कर अनेक प्रकार की मिठाईयां बनाई और वस्त्र बुनने वाले ने कपड़े में अनेक प्रकार की बुनत के द्वारा अनेकों प्रकार के वस्त्र बना दिये। यही कारण है कि वस्त्र को देख कर जुलाहे का, मिठाई को देख कर हलवाई का और मेज़-कुर्सी को देख कर बढ़ई का अनुमान किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि कांटे की बनावट भी किसी कर्ता की अपेक्षा रखती है क्योंकि कांटे की तीक्ष्णता में सुई जैसी क्रम वाली विशेषता है और जिस किसी वस्तु में क्रम वाली विशेषता के साथ तीक्ष्णता होती है वह उसकी अपनी नहीं हुआ करती अपितु कर्ता की डाली हुई होती है। इसलिये कांटे की उत्पत्ति और उसकी तीक्ष्णता बिना किसी कर्ता के आकस्मिक By Chance नहीं हो सकती। कर्ता ने उस डाल में ही ऐसे गुण और शक्ति रख दी है कि उस से कांटे पैदा हो

जायें, बबूल में कांटे निकलते हैं, शीशम में क्यों नहीं ? इससे जाना गया कि जिन वृक्षों में कांटे निकलते हैं विधाता ने उनके अन्दर वह शक्ति रख दी है ।

हम सैंकड़ों प्रकार के वस्त्र पहनते हैं और बुनने वाले को नहीं जानते ना ही हमने उन कारीगरों को वस्त्र बुनते देखा है तो क्या यह अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे वस्त्र अपने आप बुने गये ? क्या इनकी उत्पत्ति By Chance हो जाती है ? कदापि नहीं ।

प्राचीन नैयायिक श्री जयन्त भट्ट ने ईश्वर सिद्धि पर अनुमान देते हुए क्या ही सुन्दर और प्रभावशाली शब्दों में कहा है कि–

सामान्यतोदृष्टं तु लिङ्गमीश्वरसत्तायामिदं ब्रूमहे पृथिव्यादि कार्यधर्मं तदुत्पत्तिप्रकारप्रयोजनाद्यभिज्ञ कर्तृपूर्वकमिति साध्यो धर्मः कार्यत्वात् घटादिवत् ॥

न्यायमञ्जरी ।

"हम ईश्वर सिद्धि में सामान्यतो दृष्ट अनुमान इस प्रकार कहेंगे कि पृथ्वी पर्वत नदी नाले और सूर्य्य चन्द्रादि नक्षत्रों में घड़े आदि कार्यों के समान एक विशेष धर्म पाया जाता है और वह धर्म जैसा घड़े आदि प्रत्येक कार्य्य में

होता है वैसा ही पृथ्व्यादि में भी है। वह धर्म यह है कि जैसे घड़े आदि कार्य्यों में कुम्हार आदि कर्ता ने कुछ विशेषता डाली हुई है वैसे ही ईश्वर ने भी पृथ्वी आदि कार्य्यों में विशेषता डाल रखी है। घड़ा आदि कार्य्य चाहे किसी भी अवस्था में क्यों न हो उनमें अपने कर्ता की डाली हुई विशेषता अवश्य विद्यमान रहती है और वह अपने कर्ता के विषय में घोषणा करते रहते हैं कि हमारा बनाने वाला कर्ता, हमारे उपादान मिट्टी आदि को अच्छी प्रकार जानता था, हमारे कर्ता को हमारे बनाने का प्रकार भी अच्छी तरह मालूम था, हमारे कर्ता ने किसी विशेष प्रयत्न के द्वारा हमको रचा है तथा हमारे कर्ता ने किसी विशेष अभिप्राय को सामने रख कर हमारी रचना रची है। जिस प्रकार घड़े, मेज़, पुस्तक, मकान आदि कार्य्यों में अपने २ कर्ता के विषय में ज्ञान कराने की सामग्री विद्यमान होती है और उस सामग्री से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि इस कार्य्य का कर्ता ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न वाला है उसी प्रकार पृथ्वी आदि कार्य्यों में भी उनके कर्ता को सिद्ध करने की पर्याप्त सामग्री विद्यमान है"।

आचार्य जयन्त भट्ट का कथन है कि जिस प्रकार किसी समान धर्म वाले दो पदार्थों को समान धर्म से ही एक प्रकार का समझ लिया जाता है और एक के ज्ञान

से दूसरे के विषय में भी वैसा ही जान लिया जाता है, वैसे ही कार्य्यत्व हेतु से प्रत्येक कार्य्य के कर्ता के विषय में अनुमान होता है। इसी न्याय से पृथ्वी आदि कार्य्यों को देख कर उनके कर्ता का अनुमान करना चाहिये, क्योंकि जैसा कार्य्यत्व घड़े आदि में है वैसा ही पृथ्वी आदि में भी विद्यमान है और जैसी कर्तृ ज्ञान विषयक सामग्री घटादि पदार्थों में है वैसी ही सामग्री पृथ्वी आदि में भी है।

भारतीय तत्व वेत्ता महर्षि कणाद वैशेषिक दर्शन में कहते हैं कि—

कारण गुणपूर्वको कार्य्यगुणो दृष्टः।

कार्य्य में जितने गुण होते हैं वह किसी न किसी उसके कारण से आए हुए होते हैं। जैसे घड़े में जड़त्व गुण प्रकृति से आता है तथा बोझ पृथ्वी से, लाली या अन्य रंग अग्नि से आता है और आकार प्रकार चेतन कर्ता कुम्हार के विचार से आता है। अतः यह सर्वथा ठीक ही है कि प्रत्येक कार्य्य में उसके कारणों के गुणों का सन्निवेश होता है और इसी लिये कार्य्यों में अपने २ कर्ता को जतलाने की पर्याप्त सामग्री विद्यमान होती है यही कारण है कि वस्त्र को देख कर जुलाहे का, रंगीन चीज़ को देख कर रंगने वाले का, सिलाई को देख कर दर्ज़ी का,

रसोई को देख कर पाचक का और दवाई को देख कर वैद्य का, तथा मकान को देख कर राज का और फैसले को देख कर जज का अनुमान करना पड़ता है इसी प्रकार जगत् को देख कर जगत् कर्ता ईश्वर का अनुमान करना स्वाभाविक है।

नास्तिकों का कथन है कि पृथ्वी आदि में कार्य्यत्व असिद्ध है क्योंकि कार्य्य वह होता है जिस की उत्पत्ति हुई हो और जिसका नाश हो। जैसे घड़े आदि के विषय में उन की उत्पत्ति नाश प्रसिद्ध है और उनका कार्य्य होना सभी को स्वीकार है वैसे पृथ्वी आदि का कार्य्य होना इन (नास्तिकों) को स्वीकार नहीं। जब ये कार्य्य ही नहीं तो इन में कर्ता को जतलाने की भी योग्यता नहीं इस लिये इन का कोई कर्ता नहीं।

इस आक्षेप का परिहार करने से पूर्व कार्य्य विषयक साधारण ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। इस लिये हम प्रथम यह विचार करना उचित्त समझते हैं कि कार्य्य मात्र का सामान्य लक्षण कर दिया जावे, जिस से मालूम हो सके कि घट आदि पदार्थों में तथा पृथ्वी आदि पदार्थों में कार्यत्व दृष्टि से कोई अन्तर है या नहीं। जो वस्तु उत्पत्ति आर विनाश वाली है तथा जिस वस्तु में उत्सर्पण या अपसर्पण के परिवर्तन होते रहते हैं उस को कार्य्य

कहते हैं। उत्पत्ति शब्द का व्याकरण की दृष्टि से अर्थ होता है उत्कर्ष अथवा उन्नति की ओर अग्रसर होना। इसकी सत्यता के लिये प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ पर दृष्टि डाली जा सकती है। बालक संसार में आता है तो उसके शरीर की वृद्धि होने लगती है, उसकी मानसिक उन्नति होने लगती है तथा उसके सम्बन्ध भी बढ़ने लगते हैं। उत्पत्ति के लिये दूसरा शब्द 'प्रादुर्भाव' है। प्रादुर्भाव का अर्थ है–अदृश्य अवस्था से दृश्य रूप में आना, जैसे मिट्टी में घट अदृश्य होता है परन्तु उत्पन्न होते ही दृश्य हो जाता है अथवा बीज में शाखा फल फूलादि अदृश्य होते हैं परन्तु उत्पन्न होने पर दृश्य हो जाते हैं। इसके साथ ही कार्य्य के विषय में यह भी जान रखना चाहिये कि उसका नाश भी होता है क्योंकि जिसकी उत्पत्ति होती है उसका नाश भी अवश्य होता है यह व्यापक नियम है। 'नाश' शब्द का अर्थ है दृश्य अवस्था से अदृश्य अवस्था को प्राप्त होना, जैसे घट का फूट कर मिट्टी में अदृश्य हो जाना, शरीर का जलकर भस्म होना इत्यादि। 'नाश' के लिये दूसरा शब्द 'लय' है। 'लय' का अर्थ है लीन होना अर्थात् छिप जाना। इस प्रकार कार्य्य मात्र के लिये उत्पत्ति और नाश का होना आवश्यक मानते हुए यह कहना पड़ता है कि जो वस्तु अदृश्य अवस्था से दृश्य अवस्था को प्राप्त हो

अथवा दृश्य अवस्था से अदृश्य अवस्था को प्राप्त हो उसको 'कार्य्य' कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि जो सूक्ष्म से स्थूल होता और स्थूल से सूक्ष्म होता है वह कार्य्य है इसके साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि उत्पत्ति और नाश किसी भी वस्तु के एक दम कभी नहीं हुआ करते किन्तु क्रम से हुआ करते हैं अर्थात् कुछ काल उत्पत्ति में लगता है, कुछ काल स्थिति में और उसके पश्चात् कुछ काल बिगड़ने में लगता है। जैसा कि निरुक्त में यास्क ऋषि ने स्पष्ट किया है कि—

षड्भाव विकारः—अस्ति, जायते, वर्धते, तिष्ठति, अपक्षीयते, विनश्यति चेति।

निरुक्तम्।

अर्थात् प्रत्येक भाव रूप से प्रतीत होने वाले भौतिक पदार्थों में छे विकार अवश्यमेव होते हैं।

(१) अस्ति—अपनी उत्पत्ति से पूर्व कारण रूप में विद्यमान रहना, जैसे वृक्ष अपनी उत्पत्ति से पूर्व बीज रूप में रहता है अथवा वस्त्र अपनी उत्पत्ति से पूर्व तन्तु रूप में रहता है।

(२) जायते—उत्पन्न होना, जैसे बीज से अंकुर निकलना अथवा गर्भ से बालक का बाहर आना या मेघ से पानी बरसना आदि।

(३) वर्धते—वृद्धि को प्राप्त होना अर्थात् आकृति और गुणों का विस्तार होना जैसे बीज का बढ़ते २ वृक्षाकार होजाना अथवा बालक का जवान होते जाना।

(४) तिष्ठति—सर्वांग उन्नत होकर स्थित रहना जैसा कि प्रत्येक कार्य्य पदार्थ अपनी स्थिति की अवस्था में रहता है।

(५) अपक्षीयते—क्षय को अर्थात् अवनति को प्राप्त होना, जैसा कि हर एक वस्तु पुरानी होकर गलने सड़ने या कमज़ोर होने लगती है। प्राणधारियों में वृद्धावस्था का होना भी अपक्षय कहलाता है।

(६) विनश्यति—नष्ट होजाना अर्थात् कार्य्यत्व की अवधि अथवा क्रम को समाप्त कर देना, जैसे बीज का वृक्षाकार होने के अनन्तर आटा, तेल, लकड़ी आदि रूपों में समाप्त होना।

उपरोक्त विवरण से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि जिस वस्तु में षट् भावविकार अर्थात् छे प्रकार का परिवर्तन हो वह कार्य्य होता है। जो व्यक्ति जगत् को कार्य्य नहीं मानता उससे पूछा जाना चाहिये कि जगत् में परिवर्तन है या नहीं। यदि परिवर्तन है जैसा कि वादी प्रतिवादी सभी स्वीकार करते हैं, तो जगत् को 'कार्य्य'

मानने में संकोच नहीं करना चाहिये। यद्यपि हम लोगों में से किसी ने भी जगत् को उत्पन्न होते नहीं देखा तथापि इतने मात्र से हम यह नहीं कह सकते कि जगत् की उत्पत्ति ही नहीं हुई। जो व्यक्ति स्वयं न देखने के कारण जगत् की उत्पत्ति स्वीकार नहीं करते उनसे कहना चाहिये कि किसी भी पुत्र ने आज तक अपने माता पिता की उत्पत्ति होते नहीं देखी, परन्तु इतने मात्र से कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि उसके माता पिता की उत्पत्ति नहीं हुई या वह सदा से ऐसे ही चले आ रहे हैं। यदि वह व्यक्ति माता पिता की वृद्धावस्था (अपक्षय) अथवा मृत्यु (नाश) को देखता अथवा मानता है तो उसके लिये यह भी मानना आवश्यक होगा कि माता पिता की उत्पत्ति हुई है। कोई काल था जिस समय माता पिता वर्तमान शरीर धारी नहीं थे। कारण यह है कि उत्पत्ति और विनाश प्रत्येक कार्य्य के साथ आवश्यक सम्बन्ध रखते हैं, जैसा कि धागे के आदि अन्त के दोनों सिरे होते हैं अथवा नदी के दोनों किनारे होते हैं। कौन माई का लाल है जो यह कहे कि धागे का एक ही सिरा होता है, नदी का दूसरा किनारा नहीं होता इत्यादि। वास्तव में उत्पत्ति के लिये विनाश का होना और विनाश के लिये उत्पत्ति का होना परम आवश्यक और अटल नियम है। तभी तो श्री

कृष्ण जी ने कहा है कि–

जातस्यहि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।

गीता ॥

जिस प्रकार किसी वस्तु की उत्पत्ति देख सुनकर उस के विषय में यह धारणा करना कि उसका नाश भी अवश्यम्भावी है अथवा किसी वस्तु का नाश देख-सुन कर यह निश्चय करना कि उसकी उत्पत्ति अवश्य हुई होगी, उसी प्रकार किसी वस्तु की आकृति, परिमाण, शक्ति तथा अन्य गुणों में परिवर्तन देख-सुन कर उस वस्तु के सम्बन्ध में यह धारणा करना अत्यन्त स्वाभाविक है कि उस वस्तु की कभी न कभी अवश्य उत्पत्ति हुई होगी और नाश भी अवश्य होगा। कारण यह है कि बीच की अवस्था को देखकर उसके आदि अन्त का स्वीकार करना भी आवश्यक हो जाता है। जो व्यक्ति नदी के किनारे पर खड़ा होकर नदी के प्रवाह का निरीक्षण कर रहा हो और यह कहता हो कि इस नदी की उत्पत्ति और समाप्ति कहीं नहीं है। उसका कथन ठीक नहीं है। चाहे उसको या किसी अन्य व्यक्ति को नदी का उत्पत्तिस्थान अथवा लयस्थान प्रतीत न हो, इतने मात्र से नदी की दोनों अवस्थाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता क्योंकि नदी की मध्यावस्था ही सिद्ध करती है कि यह जलप्रवाह किसी न किसी पर्वत से बहकर

आता है और कहीं न कहीं बड़ी नदी या समुद्र में समाप्त होता होगा ? जगत् भी नदी के समान है। इसमें भी अनेकों दृश्यों का प्रवाह बहा करता है, इसमें भी अनेकों परिवर्तन होते रहते हैं, अतः यह जगत् भी आदि अन्त वाला है। जो वस्तु परिवर्तनशील होती है उसकी किसी काल में उत्पत्ति तथा किसी काल में विनाश अवश्य होता है और जिसके उत्पत्ति विनाश होते हैं वह अवश्य कार्य्य होता है, जैसे घट, गृह, वृक्ष, वस्त्र आदि–अतः जगत् कार्य्य है।

परिवर्तनशील होना, आदि-अन्तवाला होना तथा चक्षुरादिबाह्य इन्द्रिय का विषय होना यही कार्य्य का लक्षण है। जगत् में भी यह लक्षण पाए जाते हैं। अतः जगत् घटवत् कार्य्य सिद्ध होता है। जो लोग जगत् में परिवर्तन नहीं स्वीकार करते उनको भूगोल, खगोल तथा भूगर्भादि विद्याओं का अभ्यास करना चाहिये और यह जानना चाहिये कि किस प्रकार पर्वतों से पत्थर और मिट्टी आदि घिस घिस कर रेत बनती और भूमि की तैह जमती है, किस प्रकार भूकम्प आते और आकाश के तारागण में परिवर्तन होते हैं और किस प्रकार सूर्य्यादि की उष्णता में कमी हो रही है तथा किस प्रकार जीव सृष्टि के प्रत्येक विभाग में ज्ञान कर्म और भावना सम्बन्धी न्यूनतायें

उत्तरोत्तर अग्रसर हो रही हैं। अद्वितीय नैयायिक श्रीमान् उदयनाचार्य जी महाराज जगत् को कार्य्य सिद्ध करते हुए कहते हैं कि–

जन्म संस्कार विद्यादेः शक्तेः स्वाध्याय कर्मणोः।
ह्रासदर्शनतो ह्रासः सम्प्रदायस्य मीयताम्॥

न्याय कुसुमाञ्जलि॥

इस परिवर्तनशील जगत् की प्रलयोन्मुख प्रवृत्ति दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए ह्रास की सूचना दे रही है और वह दिन दूर नहीं जब जगत् रूपी घड़ा विनष्ट हो जायगा। जन्म सम्बन्धी उत्पत्ति क्रम पर दृष्टि दी जावे तो मालूम होगा कि वर्तमानकालीन शरीरों की रचना इतनी निकृष्ट है कि प्राचीनकाल के हृष्ट पुष्ट, दीर्घजीवी और निरोग शरीरों से तुलना करते हुए हंसी आती है। आज कल के शरीर उतने लम्बे चौड़े नहीं हैं जितने पिछले लोगों के थे, नाही वह लम्बी आयु सुनने में आती है जो पूर्वजों को प्राप्त थी शरीरों में रोगों का मुकाबला करने की शक्ति नहीं रही, साधारण सा परिवर्तन मृत्यु तक ले जाने के लिये पर्याप्त होरहा है। बल पौरुष का लेश भी दृष्टिगोचर नहीं होता। धारणा शक्ति दिन प्रतिदिन कम होती जारही है। ब्रह्मचर्य्य का अभाव होने लगा है। मस्तिष्क इतने दुर्बल

होने लगे हैं कि चारों वेदों का कराठस्थ रखना तो दूर रहा, साधारण बातें भी स्मरण रखने की शक्ति नहीं रही। धार्मिक संस्कारों पर पाषाण के समान दृढ़ रहना कथा मात्र रह गया है। तुच्छ प्रलोभनों के वशीभूत होकर धर्म हीन होने के समाचार सुनने देखने में आते रहते हैं। विद्यायें लुप्त होती जा रही हैं। अद्भुत कर्म करने की योग्यता नष्ट होती जारही है। इस लिये इस प्रकार के उत्तरोत्तर ह्रास चिह्न पाये जाने से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि यह जगत् विनाश के मार्ग का पथिक बन रहा है। इसी लिये जगत् के परिवर्तनों को देखते हुए यह कहना अनिवार्य है कि जगत् भी घट आदि पदार्थों के समान कार्य्य है जब कार्य्य है तो इस कार्य्य का कोई कर्ता अवश्य होना चाहिये क्योंकि कोई भी सुसम्बद्ध-कार्य्य Bychance कदापि स्वयमेव नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त किसी वस्तु को कार्य्य जानने के लिये एक सहल मार्ग यह है कि उसके अवयव पृथक् हो सकते हैं या नहीं हम एक मिट्टी के ढेले को लेते हैं और विज्ञान द्वारा उसके अवयवों को पृथक् पृथक् कर सकते हैं तो ज्ञात हुआ कि पृथिवी में जल और अग्नि के परमाणु भी मिले हुए हैं एक तत्व नहीं है मिले हुए होने से कार्य्य सिद्धि अवश्य हो गई।

अभी तक हमने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि—जो कार्य्य होता है वह उत्पत्ति विनाश वाला और परिवर्तन शील तथा इन्द्रिय ग्राह्य अवश्य होता है और इसके साथ ही उसमें कर्ता को जतलाने की विशेष सामग्री सन्निविष्ट होती है, यह बातें जैसे घट आदि मनुष्य कृत कार्य्यों में होती हैं वैसे ही नदी, वृक्ष, वन, पर्वत, पृथिवी और नक्षत्रादि में भी हैं। इस लिये जैसे घट आदि का कोई चेतन कर्ताअवश्य होता है वैसे ही पृथिवी आदि का भी कोई अवश्य रचने वाला है और वही जगत्कर्त्ता जगदीश्वर ईश्वर है।

कार्य्यत्व हेतु से ईश्वरानुमान करने पर अनीश्वरवादियों की तरफ से दूसरी आपत्ति यह उठाई जाती है कि यदि घट आदि पदार्थों के उदाहरण से कर्त्ता सिद्ध होता हो तो उसका शरीरधारी होना भी आवश्यक है क्योंकि घट आदि पदार्थों के कर्त्ता कुम्हार आदि शरीरधारी ही देखे जाते हैं अतः यदि जगत् का रचने वाला कोई ईश्वर है तो वह अवश्यमेव शरीरधारी होगा। और ईश्वर को शरीरधारी मानने पर यह बताना होगा कि ईश्वर का शरीर किस ने बनाया क्योंकि शरीर का बनाने वाला ईश्वर से भिन्न मानना आवश्यक है। ऐसी अवस्था में आपत्ति यह होगी कि शरीर धारण से पहिले, ईश्वर का ईश्वरत्व सिद्ध नहीं

होगा। यदि कहो कि अपने शरीर को पहिले आप रचता है पीछे उस शरीर से जगत् रचता है तो ऐसा मानना भी साहसमात्र तथा दोषयुक्त है, कौन है जो अपने शरीर को आप रचे। अपने शरीर को स्वयं रचना सर्वथा असम्भव है। यदि इन आक्षेपों से पीछा छुड़ाने के लिये ईश्वर को बिना शरीर के माना जाय तो बिना शरीर के किसी का कर्त्ता होना सिद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि एक भी ऐसा कर्त्ता नहीं मिलेगा जो बिना शरीर धारण किये क्रिया कर सके और किसी कार्य्य का कर्त्ता हो सके। इसलिये इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वर नहीं है।

जगत् के कर्त्ता ईश्वर को न मानने के लिये शरीरधारी होने की आपत्ति उठाना, भारी भ्रम में पड़कर सत्य का परित्याग करना है। वास्तव में न तो ईश्वर शरीरधारी ही है और ना ही कोई शरीरधारी जगत् जैसे विस्तृत ब्रह्माण्ड को रच ही सकता है। ईश्वर शरीरधारी नहीं है क्योंकि यदि शरीरधारी होकर जगत् रचे तो उसका शरीर किस स्थान पर स्थित होकर जगत् की रचना में प्रवृत हुआ? वह स्थान निश्चय से उस शरीरधारी का पैदा किया हुआ नहीं हो सकता।

बहुत से लोगों की यह निराधार कल्पना है कि बिना शरीरधारी निराकार ईश्वर ने जगत् की रचना रची

है। इस अद्भुत सत्य का पता स्वामी दयानन्द सरस्वति जी ने लगाया है और निराकार बिना शरीरधारी ईश्वर से जगत् रचना का कार्य्य होना यह भी एक नई कल्पना है, जिसको आज तक किसी प्राचीन दार्शनिक विद्वान ने स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार की धारणा रखने वाले सज्जनों की सन्तुष्टि के लिये हम 'न्यायकुसुमाञ्जलि' के पांचवें स्तवक के प्रारम्भिक १५ पृष्ठ पढ़ने की प्रार्थना करेंगे। जिस में श्री उदयनाचार्य जी ने अत्यन्त मार्मिक शब्दों में विस्तृत शास्त्रार्थ रच कर साकार वादियों को सदा के लिये निरुत्तर कर दिया हुआ है। परन्तु जा विद्वान उक्त ग्रन्थ की जटिल भाषा को नहीं समझ सकते, उनकी सहायता के लिये हम यहां पर भारत दिग्विजयी, प्राचीन दार्शनिक, नैयायिकशिरोमणि, श्री जयन्तभट्ट के बहुमूल्य विचारों को उधृत करते हैं। यह विचार आठ नौ सौ वर्ष के पुराने ग्रन्थ से लिये गये हैं जोकि उक्त आचार्य ने "न्यायमञ्जरी" के नाम से लिखा था। आज भी यह ग्रन्थ न्यायाचार्य परीक्षा में पण्डितों को अवश्य पढ़ना पड़ता है। जयन्तभट्ट कहते हैं कि—

यत् पुनर्विकल्पितं सशरीर ईश्वरः सृजति जगत् अशरीरोवेति—तत्राशरीरस्यैव स्रष्टत्वम्.

स्याभ्युप गच्छामः । ननु क्रियावेश निबन्धनं कर्तृत्वं न पारिभाषिकं तदशरीरस्य क्रियाविरहात्कथं भवेत्, कस्य च कुत्राशरीरस्य कर्तृत्वं दृष्टमिति । उच्यते—ज्ञानचिकीर्षा प्रयत्नयोगित्वं कर्तृत्वमाचक्षते तच्चेश्वरे विद्यत एवेति । स्वशरीरप्रेरणे च दृष्टमशरीरस्याप्यात्मनः कर्तृत्व मिच्छा मात्रेण च तस्य कर्तृत्वात् ॥

न्याय मञ्जरी ।

"यह जो आक्षेप उठाया गया था कि ईश्वर शरीर धारी होता हुआ जगत् को रचता है या बिना शरीर धारण किये इत्यादि । उसके विषय में हमारा उत्तर यह है कि हम ईश्वर को शरीरधारी नहीं मानते अपितु बिना शरीर धारण किये जगत् का रचने वाला मानते हैं ।"

यदि यह कहा जावे कि कर्ता के लिये क्रिया करना और क्रिया करने के लिये शरीर वाला होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये शरीर रहित ईश्वर को 'कर्ता' भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह क्रिया नहीं कर सकता। भला ऐसा कौन 'कर्ता' है जो बिना शरीर के क्रिया करे और आपने ऐसा 'कर्ता' कहां देखा है जो शरीर के बिना क्रिया करे । तो सुनिये, इसका उत्तर यह है कि कर्ता होने के लिये

क्रिया देने वाला होना ही आवश्यक है यह आवश्यक नहीं कि वह शरीर वाला भी हो। कर्ता होने के लिये तीन बातों की ही आवश्यकता है ज्ञान अर्थात् उसको इस बात का पता हो कि अमुक कार्य्य इस प्रकार से किया जावे तो सफलता हो सकती है, करने की इच्छा अर्थात् उसको कार्य्य बनाने की इच्छा भी होनी चाहिये क्योंकि जब तक बनाने की इच्छा ही न हो तब तक कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता तथा प्रयत्न करने की योग्यता अर्थात् इच्छानुसार कार्य्य कर सकना। यह तीन बातें ही कर्ता होने के लिये आवश्यक हैं और यह तीनों (ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न) ईश्वर में विद्यमान हैं ही।

स्वाभाविकीय ज्ञान बलक्रियाच।

श्वेता।

इसलिये शरीर रहित ईश्वर को जगत् कर्ता होने से कोई रोक नहीं सकता। रही बिना शरीर के क्रिया कर सकने की बात। सो वह भी आत्मज्ञानियों से छिपी हुई नहीं है। विचार कीजिये कि जब आत्मा (जीव) अपने शरीर को प्रेरणा करता है, हिलाता बोलता या गमनागमन करता है उस समय केवल इच्छा मात्र से ही काम करता है तब स्वरूप से शरीर रहित होता हुआ ही शरीर

को गति देता है। जैसे चुम्बक स्वयं गति ना करता हुआ लोहे को गति देता है अतः जैसे शरीर रहित जीवात्मा अपने शरीर को अनेक प्रकार की गति देता है उसी प्रकार ईश्वर भी शरीर रहित होता हुआ जगत् को क्रिया दे सकता और अनेक प्रकार की रचना रच सकता है। शरीरधारी वस्तुओं में और नियम होते हैं और अन्दर से काम करने वाली वस्तुओं में और नियम होते हैं परमात्मा अन्दर से काम करता है अतःउसे शरीरधारी होने की आवश्यकता नहीं।

जो लोग शरीर रहित कर्ता का दृष्टान्त पूच्छा करते हैं उनको चाहिये कि ठण्डे दिल से इस युक्ति पर विचार करें और आत्मगति के उदाहरण से अपनी भ्रन्ति दूर करलें। जब हाथ उठाने के लिये आत्मा को शरीरधारी नहीं होना पड़ता तो परमात्मा जो सब स्थानों पर व्यापक है उसे शरीर क्यों धारण करना पड़ेगा। श्री जयन्त भट्ट का अभिप्राय यह है कि शरीर में अनेकों प्रकार की जो क्रियायें होती हैं, वही इस विषय का प्रबल प्रमाण हैं कि कर्ता होने के लिये शरीरधारी होना आवश्यक नहीं किन्तु ज्ञान-इच्छा-प्रयत्न वाला चेतन होना ही आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति इस युक्ति को न माने तो उससे पूछा जाना चाहिये कि आप जो चलते हो अथवा बोलते हो। यह टांगों को चलाने अथवा जिह्वा को हिलाने का काम किस प्रकार करते हो?

क्या हाथों से पकड़ कर जिह्वा को हिलाते हो या बिना हाथ लगाये इच्छा मात्र से जिह्वा को हिलाते हो ? क्या दौड़ते समय हाथों से टांगों को हिलाया करते हो या बिना हाथ लगाये मात्र से दौड़ा करते हो ? अनुभव प्रमाण कहता है कि किसी भी व्यक्ति को बोलने के लिये अथवा दौड़ने के समय हाथों से जिह्वा को पकड़ कर हिलाने या टांगों को गति देने की आवश्यकता नहीं होती किन्तु यह कार्य्य तो आत्मा की इच्छा मात्र से सम्पन्न होने लगते हैं। इस पर भी यदि कोई दुराग्रह ही करे और यह भी कहे कि हमारे शरीर के अन्दर इसी नमूने का एक और शरीर है जिससे हम इस शरीर को गति देते हैं। यदि ऐसा ही हो तो अन्दर वाले शरीर के हाथ पैर आदि इन हाथ पैरों से अवश्य छोटे होने चाहियें। फिर भी प्रश्न होगा कि जिस अन्दर के छोटे शरीर के हाथों से हम इस शरीर के हाथों-पैरों को हिलाते हैं उन भीतर वाले हाथ-पैरों को किस तरह हिलाते हैं यदि और हाथों से तो वह हाथ और भी छोटे होने चाहियें। अन्ततः चलते २ यह स्वीकार किये बिना पिण्ड नहीं छुड़ाया जा सकेगा कि भीतर के अत्यन्त छोटे शरीर को हिलाने जुलाने के लिये किसी और शरीर की आवश्यकता नहीं अपितु इच्छा मात्र से उस शरीर को गति दी जाती है। जब अन्त में यही

मानना है तो पहिले ही क्यों न स्वीकार कर लिया जावे कि आत्मा शरीर रहित होता हुआ शरीर को गति देता है। हमारे विचार में ऐसा मानना जहां अनुभवसिद्ध और गौरव रहित है वहां अनवस्था दोष शून्य भी है। हम बल पूर्वक ऐसी धारणा रखने वालों को कहेंगे कि वह इस समय में भी कोई एक वस्तु ऐसी दिखादें जो कुदरत की ओर से बनती हो और उसे किसी के साकार हाथ बनाते हों भला बच्चे को गर्भ के भीतर कौन से हाथ बनाते हैं इतने बड़े वृक्ष और कटहर जैसे बड़े २ फल किसके हाथ से बन रहे हैं छोटी सी बेल के साथ इतना बड़ा तरबूज़ कौन बनाता है रंग बिरंग के फूलों को कौन कई प्रकार के रंग देकर सजाता है वृक्षों के पत्तों को कौन से हाथ काट कर कई प्रकार के दन्दाने दार बना देते हैं ढाक के तीन ही पात कौन कारीगर बनाता है इत्यादि वर्तमान में भी सब चीजे स्वतः उस भगवान् की कृपा और नियम और अलौकिक शक्ति से हमारे सामने बन रही हैं किसी के शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं तो फिर यह प्रश्न सर्वथा निराधार है।

नास्तिकों की ओर से तीसरी आपत्ति यह उठाई जाती है कि जब ईश्वर कुम्हार आदि के समान शरीरधारी ही नहीं तो कार्य्य बनाने के लिये व्यापार भी नहीं कर

सकेगा तब जड़ परमाणु ईश्वर के आशय को कैसे समझ पायेंगे कि हमको क्या करना है या कैसे बनना है क्योंकि जड़ वस्तु में ज्ञान की योग्यता ही नहीं हो सकती। इस प्रकार परमाणुओं में क्रिया भी न हो सकेगी और परमाणुओं में गति न हो सकने के कारण जगत् रचना का कार्य्य ही न हो सकेगा।

वृत्तिकार श्री जयन्त भट्ट उत्तर देते हैं कि—

यथा ह्यचेतनः काय आत्मेच्छामनुवर्तते तदिच्छामनुवर्त्स्यन्ते तथैव परमाणवः ॥

न्याय मञ्जरी ॥

जिस प्रकार यह जड़ शरीर आत्मा की इच्छा के अनुसार व्यवहार करने लगता है ठीक उसी प्रकार जड़ परमाणु भी ईश्वर की इच्छानुसार सूर्य्य चन्द्र और पृथिवी आदि बनने का प्रयत्न करेंगे।

शरीर एक जड़ पदार्थ है जैसा कि मृत्युकाल में स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। इस जड़ शरीर के जिस अंग को जिस प्रकार की आत्मा गति देना चाहता है, शरीर के वह वह अंग आत्मा की इच्छा का अनुवर्तन करने लगते हैं देखने की इच्छा करता है तो आंखें खुल जाती हैं, सूंघने की इच्छा करता है तो नासिका श्वास द्वारा काम करने लगती

है, दौड़ने की इच्छा करता है तो टांगें तीव्र गति करने लगती हैं और बोलने की इच्छा करता है तो जिह्वा उच्चारण करना आरम्भ कर देती है। आंख, कान, नाक और जिह्वा आदि ज्ञान शून्य जड़ वस्तुयें हैं, परन्तु देखिये–आत्मा की इच्छा से कैसे ठीक२ काम करने लग पड़ती हैं। इसी प्रकार ईश्वर की इच्छामात्र से परमाणुओं में गति हो जाती है। ईश्वर जब चाहता है कि इन परमाणुओं को मिला कर सूर्य्य बनाऊं तो उसकी इच्छा से उन परमाणुओं में विशेष प्रकार की क्रिया होने लगती है और सूर्य्य की उत्पत्ति हो जाती है, जब ईश्वर की इच्छा बादल बनाकर वर्षा करने की होती है तो समुद्र के जलीय परमाणुओं में मेघ बनने की प्रवृत्ति जागृत हो जाती है।

अहमयो अनयं वावशाना ॥

ऋ. ॥

गरजने वाले बादल मैं ही लाता हूं इत्यादि। अन्य कार्य्यों की रचना भी इसी प्रकार ईश्वर इच्छा से हो जाती है। इसलिये यह आक्षेप भी कोई बलवान् नहीं है क्योंकि आत्मा की शरीर गति के उदाहरण से इसका भी अनायास ही परिहार हो जाता है। वर्त्तमान् में भी उत्पत्ति का सब व्यवहार ऐसे ही हो रहा है।

महर्षि व्यास 'वेदान्त दर्शन' में लिखते हैं कि–

अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात् ॥

३–२–१४ ॥

ईश्वर निराकार ही है क्योंकि वेद और उपनिषद् अरूप, अमूर्त अव्यक्त, अशरीर, अव्यय आदि शब्दों से ही ईश्वर का वर्णन करते हैं।

श्री शंकराचार्य इस पर भाष्य करते हुए लिखते हैं कि–

रूपाद्याकाररहित मेव ब्रह्म अवधारयितव्यम् ॥

अर्थात् ब्रह्म को निराकार ही मानना चाहिये।

"ईश्वर निराकार ही है तथा शरीर रहित होता हुआ ही जगत् रचता है"। इस बात की पुष्टि के लिये जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य की सम्मती भी उद्धृत की जाती है ताकि वेदांत की आड़ में साकार का आकार प्रकार खड़ा करने वाले भी जान जायें कि साकार ईश्वर से जगत् रचना का कार्य्य हो सकना सर्वथा असम्भव है।

व्यास रचित वेदान्त दर्शन पर शारीरिक भाष्य करते हुए शंकर स्वामी लिखते हैं–

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः।

वे. २।२।४०

शांकर भाष्यम्—अथ लोक दर्शनानुसारेणे श्वरस्यापि किंचित्करणानामायतनं शरीरम् कामं कल्प्येत। एवमपि नोपपद्यते सशरीरत्वे हि सति संसारिवद्भोगादि प्रसंगादीश्वरस्याप्यनीश्वरत्वं प्रसज्येत॥

"क्यों न ईश्वर का भी हाथ पैर आदि इन्द्रियां से युक्त कोई शरीर मान लिया जावे क्योंकि संसार में जितने भी चेतन कर्ता हैं वह सब शरीरधारी ही देखने में आते हैं। उत्तर—ऐसा कदापि नहीं माना जा सकता क्योंकि ईश्वर को शरीरधारी मानने पर उसका ईश्वरत्व ही नष्ट हो जायगा और जैसे संसार के अन्य शरीरधारी सुखदुःख भोगने में परतन्त्र और जन्म मरण के बन्धन में जकड़े हुए हैं वैसे ही ईश्वर को भी दुःखी और फल भोगने में परतन्त्र मानना पड़ेगा।"

श्री शंकराचार्य्य के भाष्य में जिस युक्ति का आश्रय लेकर ईश्वर को शरीर रहित सिद्ध किया गया है उसका स्वरूप सर्वथा स्पष्ट है। युक्ति यह है कि जो शरीरधारी होता है वह सुख दुःख आदि भोगने में पराधीन अवश्य होता है, जैसे संसार के प्राणी। यदि ईश्वर को भी शरीरधारी माना जावे तो उसको भी सामान्य जीवों के

समान शरीर धारण के लिये तथा शरीर के भोग प्राप्त करने के लिये किसी अपने से बड़े तथा स्वतन्त्र चेतन के आधीन मानना होगा। ऐसा मानने से साधारण जीवों में और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं रहेगा तब ऐसे शरीरधारी परतन्त्र और जन्म मरण के चक्र में भ्रमण करने वाले ईश्वर का ईश्वरपन ही क्या रहा, वह तो अनीश्वर हो सिद्ध हुआ। अतः ईश्वर को शरीर रहित (निराकार) मानना ही युक्ति युक्त है।

इतने पर भी जो लोग जगत् कर्ता को शरीरधारी मानते तथा दुराग्रह का परित्याग नहीं करते उनसे पूछना चाहिये कि ईश्वर ने जगत् को बनाने से पहिले अपने शरीर को बनाया या जगत् को रच लेने के पश्चात् शरीर धारण किया। जगत् रचने से पहिले तो शरीर रचना सर्वथा असम्भव है क्योंकि शरीर की उत्पत्ति से पूर्व पृथिवी आदि पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति हो चुकना अत्यन्त आवश्यक है यदि जगत् की रचना हो चुकने पर ईश्वर ने शरीर धारण किया, तो यह व्यर्थ सिद्ध हुआ क्योंकि ऐसे शरीर धारण के विना ही ईश्वर ने जब सूर्य्य चन्द्र और पृथिवी आदि महान् लोक लोकान्तर रच दिये तो फिर ऐसा कौन सा महान् अद्भुत काम रह गया था जिस को सूर्य्यादि की रचना से विलक्षण कहा जावे और उस के लिये ईश्वर को

शरीर धारण करना पड़े ?

कई लोग कहते हैं कि ईश्वर का शरीर भौतिक (पञ्चभूतों से बना हुआ) नहीं है किन्तु 'माया' का है और माया के शरीर के लिये कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती परन्तु ऐसा मानना भी अपने को धोका देना तथा दूसरों को वाक् छल से ठगना है। विचारा जावे तो 'माया' और 'प्रकृति' तथा पञ्चभूत पर्यायवाची शब्द हैं और शब्दान्तर से अर्थान्तर नहीं माना जा सकता। श्वेताश्वतर उपनिषद् में स्पष्ट कहा है कि "मायां तु प्रकृतिं विद्यात्" माया को प्रकृति समझो। यदि यह ना मानो तो हम पूछेंगे कि माया क्या वस्तु है कहां से और कैसे ब्रह्म पर आ पड़ी ब्रह्म के भीतर से निकली या बाहर से आई और ब्रह्म को उसका आश्रय क्यों लेना पड़ा क्या बिना माया के ईश्वर जगत् की उत्पत्ति में असमर्थ था, वर्त्तमान में जो उत्पत्ति हो रही है उसके लिये ईश्वर माया का शरीर लिये कहां बैठा है ? इतने पर भी यदि ईश्वर के शरीर को अभौतिक या अप्राकृतिक ही मानना हो तो ऐसे शरीर को 'शरीर' सिद्ध करना महा कठिन हो जायगा। अभौतिक और शरीर यह दोनों शब्द परस्पर विरोधी हैं। एक ही वस्तु शरीर भी हो और अभौतिक भी हो, यह नहीं हो सकता। शरीर का अभौतिक होना किसी भी युक्ति से सिद्ध नहीं किया जा

सकता। इसी प्रकार अभौतिक वस्तु को शरीर कहना भी सर्वथा असंगत है।

सार यह है कि यदि ईश्वर न होता तो जगत् की रचना भी न होती, परन्तु जगत् की रचना बड़ी भारी बुद्धिमत्ता से हुई है इसलिये जगत् का रचने वाला ईश्वर अवश्य है।

दूसरी युक्ति

आयोजन हेतु से ईश्वर का अनुमान

सृष्टि के उत्पत्ति क्रम पर विचार करने से मालूम होता है कि सब से पहिले क्रिया परमाणुओं में हुई। एक परमाणु दूसरे से मिला तो 'द्व्यणुक' की रचना हुई, तीन मिले तो 'त्र्यणुक' बना तथा चार मिले तो 'चतस्रेणु' बना इसी प्रकार ज्यों २ परमाणु मिलते गये, त्यों २ आकार बढ़ता गया और ज्यों ज्यों आकार प्रकार बढ़ता गया त्यों त्यों लोक लोकान्तर बनते गये। लोक लोकान्तरों की उत्पत्ति होने पर परस्पर आकर्षण और भ्रमण होने लगा। यह गति विधि ऐसी नियमपूर्वक चली कि आज उसकी कल्पना करने में भी बड़े बड़े विद्वान् चकरा जाते हैं। यह रचना ऐसी बुद्धिमत्ता से हुई है कि सृष्टि के गुप्त रहस्यों का पता लगाना कठिन हो रहा है। इस पर भी जिन

विद्वानों ने अपने जीवन लगा कर सृष्टि में होने वाले अद्भुत परिवर्तनों का ऐतिहासिक क्रम खोज निकाला है और अनेक प्रकार की विद्याओं का पता लगाया है, उनके अनुभवों, अन्वेषणों तथा विचारों को सामने रख कर प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को सच्चे हृदय से स्वीकार करना पड़ता है कि जगत् का आयोजन किसी विशेष प्रयोजन को लेकर हुआ है और इस जगत के नियम बद्ध संचालन का आयोजन किसी महान् बुद्धिमान् का किया हुआ है। यदि कोई बुद्धिमान् जगत् का आयोजन न करता तो निश्चय से यह जगत् इतना सुन्दर, इतना नियमबद्ध तथा इतना महत्वशाली कदापि न होता, जितना कि इस समय है। जगत् का कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिससे रचने वाले की अलौकिक रचना चातुरी का पता न चलता हो। भौतिक विज्ञान के पण्डितों का तो यहां तक कहना है कि जैसी गति का नियम पृथिवी और सूर्य्य आदि में है वैसी ही गति पदार्थों के परमाणुओं में होरही है। जितनी उष्णता सूर्य्य में है उतनी ही हमारी पृथिवी के अन्दर है। समुद्र के अन्तस्तल में बड़ी विचित्र सृष्टि चल रही है। हिमालय के गर्भ में अनेक धातु उपधातु बनने का कार्य्य हो रहा है। कई स्थानों में पृथिवी के अन्दर ही अन्दर मिट्टी के तेल के कूएं तैयार हो रहे हैं। कहीं स्वर्ण चांदी

और रत्नों के बनाने का काम चल रहा है। कहीं सीमेण्ट का पत्थर बन रहा है। कहीं लोहा तैयार हो रहा है। कहीं वर्षा के लिये बादलों की रचना की जारही है इत्यादि।

यह सब अद्भुत कर्म ऐसे नहीं हैं कि इनको मनुष्य बना सके और ना ही ऐसे हैं कि बिना किसी बुद्धिमान् की सहायता से अपने आप बना करें। इसलिये सृष्टि के आयोजन पर दृष्टि रखते हुए हमें कहना पड़ता है कि जगत् का आयोजन किसी बुद्धिमान् कर्ता का किया हुआ है, जो जो आयोजन होता है वह अवश्य किसी बुद्धिमान् कर्ता का रचा होता है, जैसे राज महल। जगत् में भी आयोजन है इसलिये यह आयोजन भी बुद्धिमान् कर्ता का किया हुआ है। और वह बुद्धिमान् कर्ता सिवाय ईश्वर के और कोई नहीं हो सकता।

कल्पना कीजिये कि आप किसी राजमहल की झांकी ले रहे हैं। उस महल में अनेक कमरे हैं, एक एक कमरे में भिन्न भिन्न प्रकार का सामान रखा है। कहीं सोने का कमरा है तो उसमें बहुमूल्य वस्त्रों से आच्छादित शय्या सजी पड़ी है। भोजन का कमरा है तो उसमें नाना प्रकार की खाद्यसामग्री प्रस्तुत रखी है। बैठने का स्थान है तो उसमें विचित्र विचित्र कुरसियें और मेज़ें रखी हैं। अल्मारियों में अनेकों विषयों की पुस्तकें सुसज्जित हैं।

कहीं बिजली के लैम्प लटक रहे हैं। कहीं पंखे चल रहे हैं इसी प्रकार अमोद् प्रमोद् के साधनों का भी भारी जमघट लगा हुआ है। बाहर खेल कूद के साधन हैं। चारों ओर बाग बगीचे लह लहा रहे हैं। जिनमें अनेकों प्रकार के रंग विरंगे फल फूल वाले वृक्ष शोभा दे रहे हैं। बाहर अन्दर प्रहरी पहरा दे रहे हैं इत्यादि।

जब हम इस प्रकार के आयोजन को देखते हैं तो स्वभावतः हमारे अन्तःकरण से यह ध्वनि निकलती है कि धन्य है उस शिल्पकार को जिस ने इस प्रासाद की रचना रची है और इस महान् आयोजन का समारम्भ किया है हम स्वप्न में भी कल्पना नहीं करते कि यह महान् आयोजन बिना किसी कर्ता के अपने आप होगया है हमारी बुद्धि कभी इस बात को स्वीकार नहीं कर सकती कि मिट्टी के परमाणु अपने आप पानी से मिलकर और भट्टे में गिर कर पक्की ईंटें बन गये और ईंटें अपने आप एक दूसरे पर चढ़ कर मकान कमरे और राजमहल बन गईं। वृक्षों में अपने आप क्रिया होकर बिना बढई के फर्नीचर तैयार होगया और अपने अपने स्थान पर स्वयं आ बैठा। बिजली के लैम्प और अमोद प्रमोद के बीसियों प्रकार के साधन बिना किसी बनाने वाले के अपने आप झटपट बन बना कर तैयार होगये और कारखाने से अपने आप पैक

होकर राजमहल में ठीक जगह पर आकर फिट होगये। हमारा मस्तिष्क यह भी कभी स्वीकार नहीं करता कि अनेक देश देशान्तरों के छोटे बड़े वृक्ष अपने आप वहां से उड़ कर आगये और बिना माली के विधि पूर्वक बाग बगीचे का सुन्दर रूप धारण कर बैठे। हमारा हृदय यह भी मानने को तैयार नहीं हो सकता कि बिना किसी चेतन कर्ता के परमाणु अपने आप कागज़ बन गये और लोहे या शीशे के परमाणु अक्षर बन गये और बिना संयोजक Compositor के Composed होकर अपने आप प्रैस से पुस्तकाकार होकर निकल आए और बिना Book Binder के जिल्द बन्द होकर सीधे राजमहल की अलमारी में आकर बिराजमान होगये।

कई लोग प्रकृतिवाद Materialism का आश्रय लेकर कहा करते हैं कि प्रकृति के परमाणु परस्पर मिल कर पृथिवी और सूर्य्य आदि बन गये हैं इनको गति देकर मिलाने वाला कोई ईश्वर नहीं है और ना ही जगत् रचने के लिये ईश्वर की कल्पना करने की कोई आवश्यकता है।

भारत के अलौकिक दार्शनिक 'श्री उदयनाचार्य' ऐसे लोगों की समालोचना करते हुए 'न्याय कुसुमाञ्जलि' में लिखते हैं कि–

स्वातन्त्र्ये जडताहानि नादृष्टं दृष्टघातकम्

हेत्वभावे फलाभावः विशेषस्तु विशेषवान् ॥

परमाण्वादयो हि चेतनायोजिताः प्रवर्तन्ते अचेतनत्वात् वास्यादिवत् । अन्यथा कारणं विनाकार्यानुत्पत्ति प्रसङ्गः । अचेतन क्रियायाश्चेतनाधिष्ठानकार्यत्वावधारणात् ॥

परमाणु, द्व्यणुक त्रसेणु तथा महान् सूर्य्य आदि में सृष्टि के आरम्भ में जो क्रिया हुई वह क्रिया किसी चेतन की ही दी हुई होनी चाहिये और चेतन की दी हुई गति से ही युक्त होकर ब्रह्माण्ड की रचना होनी चाहिये। क्योंकि जड़ वस्तुओं का गति करना उनका अपना धर्म नहीं हो सकता। यदि कोई चेतन, जड़ पदार्थों को गति दे तो वह हिलते जुलते हैं। नहीं तो वह वैसे ही पड़े रहते हैं और उनमें अपने आप गति नहीं आती। यदि बढ़ई अपने साधनों को गति न दे, तो लकड़ी से फर्नीचर नहीं बनता, मकान बनाने वाला यदि ईंट पत्थरों को न हिलावे तो ईंट स्वयं मकान बनने को नहीं दौड़ पड़ती तथा सैनिक यदि शस्त्र न चलाये तो शस्त्र अपने आप उछल कर शत्रु का संहार नहीं करने लगता। यदि जड़ पदार्थों में विना चेतन की गति के अपने आप क्रिया करने का स्वभाव मान लिया जावे तो कोई भी कार्य्य उत्पन्न नहीं हो सकेगा।

इस प्रकार कार्य्यमात्र की उत्पत्ति असम्भव हो जायगी। कारण यह है कि जिस किसी भी कार्य्य की उत्पत्ति मानी जावे उसका मुख्य कारण चेतन को अवश्य मानना होगा। चेतन में कार्य्य बनाने की प्रबल इच्छा होगी तो वह साधन एकत्रित करेगा और फिर साधनों में गति देकर मनोवाञ्छित वस्तु को बनायगा।

हम देखते हैं कि बड़े बड़े कारखानों में अनेक प्रकार की मशीनें काम करती हैं और एक २ मशीन कई प्रकार के विचित्र कार्य्य करती है। रेल का इञ्जिन चलता है तो बीसियों गाड़ियों को वेग से खींचने लग पड़ता है। तेल, चाय, वस्त्र, कागज़ और अनेकों प्रकार के सामान तैयार करने के कारखाने चलते हैं और धड़ाधड़ काम करते चले जाते हैं। जगत् भी एक कारखाना है इसमें भी अनेकों सामान तैयार हो रहे हैं। मशीन और जगत् को एक जैसा मानने में कोई अत्युक्ति नहीं।

कई लोग कहा करते हैं कि जगत् भी मशीन की तरह काम कर रहा है। इस (जगत् के) कारखाने में कहीं बादल बनाने का काम हो रहा है, कहीं ओले और बरफ बनाने की चेष्टायें हो रहीं हैं, कहीं वनस्पति वर्ग उन्नत होने का प्रयत्न कर रहा है और कहीं पर्वतों को गिराने और समुद्र को उछालने की क्रियायें हो रही हैं इत्यादि। यह

सब बिना किसी कर्ता के अपने आप Automatically हो रहा है।

विचार किया जावे तो यह सर्वथा बुद्धि विरुद्ध कल्पना है। हम इन अनीश्वरवादियों से आग्रहपूर्वक पूछेंगे कि हम को एक भी कारखाना या मशीन ऐसी दिखाओ जो बिना किसी ड्राइवर के अपने आप चलती हो? कोई भी मशीन या मशीन का पुर्ज़ा ऐसा दिखाओ जो बिना किसी शिल्पी Mechanic के बनाये अपने आप बन गया हो। कोई मशीन ऐसी नहीं दिखाई जा सकती जिस को बनाने, चलाने सुरक्षित रखने और नियमबद्ध व्यवस्थित होकर कार्य्य चालू रखने के लिये किसी सावधान ड्राइवर और विज्ञान निपुण शिल्पी की आवश्यकता न हो। जब वस्तु स्थिति इस प्रकार है तो जगत् रूपी कारखाने को मशीनों को बनाने और नियमपूर्वक चलाने के लिये भी किसी कुशल शिल्पी की अत्यन्त आवश्यकता है। किसी एक मनुष्य या मनुष्यसमूह में इतनी योग्यता नहीं कि ब्रह्माण्ड का कारखाना बनायें और उसमें समुद्र, पर्वत, बन तथा अन्य सूर्य्य, चन्द्र आदि की मशीनें फिट करें। इसलिये कोई चेतन विशेष अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा जो जगत् को रचने के लिये परमाणुओं में गति देकर पृथिवी सूर्य्यादि की रचना करे।

यदि कहा जावे कि परमाणु और सूर्य्यादि बिना किसी चेतन के अपने आप क्रिया करते और जगत् को बना सकते हैं तो निस्सन्देह परमाणुओं और सूर्य्यादि को स्वतन्त्र मानना होगा, परन्तु स्वतन्त्र माना नहीं जा सकता। क्यों, स्वतन्त्र क्यों नहीं माना जा सकता? सुनिये! श्री उदयनाचार्य कहते हैं कि "स्वातन्त्रये जड़ता हानिः" यदि परमाणुओं को गति करने में किसी चेतन के आधीन न मान कर सर्वथा निरपेक्ष और स्वतन्त्र माना जावे तो निस्सन्देह उनको जड़ नहीं माना जा सकेगा, अपितु चेतन ही मानना होगा। जब परमाणु से लेकर सूर्य्यादि तक सकल जड़ पदार्थों को चेतन मान लिया गया तो "जड़ता हानि"—अर्थात् कोई भी पदार्थ जड़ नहीं रहेगा। परन्तु जड़ वस्तुओं से संसार भरा पड़ा है और उनके जड़ अर्थात् परतन्त्र होने का प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। इसलिये परमाणुओं में जगत् का आकार धारण करने की पहिली क्रिया किसी चेतन द्वारा ही मानी जा सकती है।

यदि कहा जावे कि परमाणुओं में गति करना स्वाभाविक है और परमाणु परस्पर मिल कर जगत् रचना का काम कर सकते हैं। जैसे कि हाईड्रोजन और औक्सीजन नामक वायु के परमाणु मिल कर जल नामक एक तीसरा तरल दृश्य पदार्थ पैदा कर देते हैं और यह उनका स्वभाव

है। इसलिये गति देने वाले ईश्वर को मानना व्यर्थ है तो हम पूछेंगे कि परमाणुओं का स्वभाव किस प्रकार की गति करना है ? गति तीन प्रकार की होती है १–उन्नति की ओर जाना, २–उन्नति को बनाये रखना और ३–अवनति की ओर जाना। इन तीन प्रकार की गतियों में से परमाणु और सूर्य्यादि में कौनसी गति स्वाभाविक है ? उन्नति की ओर जाना अर्थात् वृद्धि प्राप्त करना ही यदि स्वभाव माना जावे तो किसी भी वस्तु का नाश नहीं होना चाहिये क्योंकि नाश की ओर जाना उसके स्वभाव के विरुद्ध होगा और जो धर्म जिसके स्वभाव के विरुद्ध हो वह धर्म उसमें कभी नहीं आ सकता। जैसे सूर्य्य प्रकाश करता है और प्रकाश करना सूर्य्य का स्वाभाविक धर्म है इसके विरुद्ध अन्धकार फैलाना सूर्य्य का धर्म नहीं है और ना ही कभी सूर्य्य प्रकाश करना छोड कर अन्धकार फैला सकता है। अतः उन्नति या वृद्धि प्राप्त करने की ओर गति करना ही यदि परमाणुओं का स्वभाव माना जावे तो प्रलय कभी न हो सकेगी और ना ही परमाणुओं से बनी हुई कोई वस्तु नष्ट भ्रष्ट हो सकेगी परन्तु पदार्थों का नाश बराबर देखने सुनने में आता है, अतः परमाणुओं का उन्नति की ओर जाना स्वाभाविक धर्म नहीं हो सकता। ह्रास अथवा नाश की तरफ जाना भी परमाणुओं का स्वभाव

नहीं हो सकता क्योंकि यदि नष्ट होना स्वभाव मान लिया जावे तो किसी भी वस्तु की उत्पत्ति नहीं होनी चाहिये परन्तु प्रतिदिन सैंकड़ों प्राणि उत्पन्न होते हैं और जगत् भी उत्पन्न हुआ है। यदि विनाश ही स्वभाव होता तो जगत् उत्पन्न न हुआ होता और ना ही आज हज़ारों पदार्थों की उत्पत्ति ही होती। उन्नति बनाये रखना भी स्वाभाविक धर्म नहीं कहा जा सकता क्योंकि ऐसा होने से सदा स्थिति ही एक रस रहनी चाहिये परन्तु ऐसा कदापि नहीं है। पदार्थ उत्पन्न भी होते हैं और विनष्ट भी होते हैं अतः बिना परिवर्तन के एक रस रहना भी पदार्थों का स्वभाव नहीं हो सकता। यदि कहा जावे कि समयानुसार तीनों प्रकार से रहना स्वभाव है तो ऐसा स्वभाव बिना चेतन के योग के कदापि नहीं हो सकता। चेतन कर्ता की दी हुई गति ही परमाणुओं को जगत् की उत्पत्ति या विनाश की ओर ले जा सकती है। अन्धी (ज्ञान शून्य) प्रकृति के अन्धे परमाणु, जगत् तो क्या बनायेंगे, उनको तो अपनी सत्ता का भी पता नहीं है जैसे कि मशीन के पुर्ज़ों को पता नहीं कि वह क्या कर रहे हैं या क्या बना रहे हैं और उनको गति किधर से मिल रही है उनको तो अपनी सत्ता का भी ज्ञान नहीं है। जैसे मशीन में क्रिया ड्राइवर की दी हुई है वैसे ही परमाणुओं

में क्रिया ईश्वर की दी हुई है और परमाणु जड़ होने से स्वतन्त्र नहीं हैं। ईश्वर जब चाहता है तो परमाणुओं को उत्पत्ति की ओर गति देता है और जब चाहता है तो प्रलय की ओर जाने की आज्ञा देता है तथा जितने काल तक खड़े रहने (स्थित रखने) की आवश्यकता समझता है उतने समय तक स्थित रखता है। परमाणु बेचारे तो ईश्वराज्ञा की प्रतीक्षा में जीवन बिताने वाले पराधीन व्यक्ति हैं। उनको आज्ञा देकर कार्य्य कराने वाले चेतन (ईश्वर) को यदि स्वीकार न किया जावे तो "हेत्वभावे फलाभावः" अर्थात चेतन की चेष्टा न मिलने से जगत् की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी, परन्तु जगत् है अतः ईश्वर ने पहिले पहल परमाणुओं को गति दी। जैसे कि सुस्त पड़ी हुई मशीन को ड्राइवर या मैकैनिकल इञ्जिनीयर गति देकर चालू Start. करता है, ठीक ऐसे ही सृष्टि के आदि में ईश्वर ने परमाणुओं को अवश्य गति दी। यदि कोई व्यक्ति Working Order में क्रिया की प्रतीक्षा करने वाली मशीन को देख कर उस अवस्था से पूर्व की तैयारी करने वाले को नहीं मानता अथवा चलती मशीन को देख कर उसको गति देने वाले ड्राइवर को नहीं मानता तो उस व्यक्ति को बुद्धिमान् मानने वाले, निर्बुद्धि ही कहे जावेंगे। इसी प्रकार जगत् की मशीन को Working Order में लाने

वाला तथा Start. करने के लिये परमाणुओं को गति देने वाला न मानना बुद्धिमानी नहीं कहा जा सकता। दो वायु के परमाणु मिलने मात्र से जल की उत्पत्ति नहीं होती किन्तु नियम पूर्वक मिलाने से होती है। नियम यह है कि $H_2 + O$ अर्थात् हाईड्रोजन के दो भाग यदि औक्सीजन के एक भाग से मिलें तो ही जल बनता है औक्सीजन दो भाग और हाईड्रोजन एक भाग मिलें तो कदापि जल नहीं बनता। जड़ परमाणुओं को तो इस नियम का पता नहीं हो सकता। जो कोई नियम को जानता है वही परमाणुओं को नियमानुसार मिला सकता है अतः इससे भी यही सिद्ध होता है कि परमाणुओं को नियम पूर्वक चला कर काम लेने वाला कोई तीसरा चेतन अवश्य होना चाहिये। अतः जगत् के परमाणुओं को नियम पूर्वक व्यवस्थित करके गति देने वाला कोई ईश्वर अवश्य है।

तीसरी युक्ति

धृति से ईश्वर का अनुमान

Teleological Argument.

तीसरी युक्ति का प्रवचन करते हुए श्री उदयनाचार्य लिखते हैं कि—

क्षित्यादि ब्रह्माण्ड पर्यन्तं हि जगत् साक्षात् परम्परया वा विधारक प्रयत्नाधिष्ठितम्, गुरुत्वे सत्यपतनधर्मकत्वात्, वियति विहङ्गम शरीरवत् तत्संयुक्तद्रव्यवच्च ॥

"पृथिवी से लेकर सौर्य जगत् और उस से भी परे अन्य नक्षत्र मण्डल और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तक सारे संसार को किसी बलवान् चेतन ने प्रयत्न द्वारा धारण किया हुआ है और गिर पड़ने तथा टकरा कर नष्ट होने से बचा रखा है। संसार के इन पृथिवी, सूर्य्य, चन्द्र और नक्षत्र आदि पदार्थों में गुरुत्व (बोझ या वज़न) है, परन्तु गुरुत्व रखते हुए भी यह भ्रमण कर रहे हैं और गिरते या टकराते नहीं हैं। यदि कोई पदार्थ गुरुत्व वाला (वज़नी) हो और वह आकाश में भ्रमण करता हो तो निश्चय होता है कि कोई चेतन उस पदार्थ को आकाश में भ्रमण करा रहा है जैसे

आकाश में पक्षी का शरीर अथवा पक्षी द्वारा (चोंच या पंजे से) पकड़ी हुई कोई चीज़, उड़ती हुई पतंग अथवा वायुयान"।

पक्षी का शरीर वज़नी है, उसमें गुरुत्व है, फिर भी वह आकाश में भ्रमण करता है और नीचे पृथिवी पर नहीं गिरता। पत्थर या लकड़ी आदि को आकाश में फेंका जाय तो थोड़ी ही देर में नीचे आ गिरते हैं परन्तु लकड़ी और धातु से बना हुआ वायुयान भारी बोझ वाला होते हुए भी कई कई घण्टे और दिनों तक आकाश में भ्रमण करता रहता है। कारण जानने पर मालूम होता है कि वायुयान को गिरने से बचाने का प्रयत्न, वायुयान का संचालक करता है। यदि वायुयान का संचालक न हो या यन्त्रों, पैट्रोल, बिजली तथा अन्य साधनों से काम लेने वाला न हो तो बोझ वाले वायुयान का पृथिवी से उड़ना और आकाश में देर तक गति करना सर्वथा असम्भव है। इसी प्रकार पक्षी का शरीर बोझ वाला होकर भी यदि पृथिवी पर नहीं गिरता तो मानना पड़ता है कि पक्षी जीवित है, पक्षी के शरीर में चेतन जीव का निवास है और वह जीव अपने शरीर को नीचे गिरने से बचाकर इच्छानुसार भ्रमण करा रहा है या कहीं ले जारहा है। हम देखते हैं कि जब शिकारी उड़ते पक्षी को गोली मार

देता है तो पक्षी का शरीर नीचे आ गिरता है तब बिना विधारक चेतन के वह शरीर एक क्षण के लिये भी भ्रमण नहीं कर सकता और नाही इच्छानुसार गति कर सकता है। जिस प्रकार उड़ते पक्षी, उड़ते हुए पतंग, या भ्रमण करते हुए वायुयान को देखकर यह स्वीकार करना पड़ता है कि पक्षी के शरीर को आकाश में उड़ाने वाला कोई चेतन है, पतंग को क्रिया देने वाला कोई चेतन है तथा वायुयान को गिरने से बचाकर अभिलषित दिशा में ले जाने वाला कोई संचालक चेतन अवश्य है अन्यथा Law of Gravitation के नियमानुसार वायुयानादि भारी चीज़ों का तो कहना ही क्या सामान्य सूत का धागा और कागज़ का छोटा सा टुकड़ा भी आकाश से गिरे बिना नहीं रह सकता। इसी प्रकार पृथिवी, सूर्य्य, चन्द्र और सकल नक्षत्रों को गिरने तथा टकराने से बचाने वाला कोई चेतन है।

श्री उदयनाचार्य जी ने एक स्थान पर कहा है कि— "विशेषस्तु विशेषवान्" विशेष अवस्था में सामान्य से काम नहीं चल सकता। उसके लिये किसी विशेषता वाले की आवश्यकता होती है अर्थात् जितनी विशेषता वाला कोई कार्य्य हो उसके लिये उतनी ही विशेषता वाले कर्ता की आवश्यकता होनी चाहिये। राजमहल का बनाना साधारण

ग्रामीण का काम नहीं हो सकता। रेल्वे का इञ्जिन बनाना साधारण लुहार का काम नहीं है। साधारण लाईनमैन, रेल्वे ट्रेनों को टकराने से नहीं बचा सकता। बिजली के कारखाने को चलाना बड़े भारी इञ्जिनीयर का ही काम हो सकता है, साधारण व्यक्ति का नहीं। इसी प्रकार सृष्टि का प्रबन्ध करना, सूर्य्य चन्द्रादि को नियमबद्ध चलाना जीवों के कर्मफल की व्यवस्था करना आदि महान् अद्भुत कामों का विधिपूर्वक होना किसी भी मनुष्य की शक्ति की बात नहीं हो सकती। रेल्वे के बड़े २ इञ्जिनीयर और कण्ट्रोलर भी अपने सहस्रों सहकारियों की सहायता रखते और अत्यन्त सावधानी से काम करते हैं तो भी रेल-गाड़ियों की टक्कर हो जाती है जिससे हज़ारों जानें नष्ट हो जाती हैं। परन्तु देखिये, हमारी पृथिवी १५ सहस्र मील की परिधि वाली लम्बी चौड़ी कितनी बड़ी ट्रेन है इस ट्रेन पर अरबों मनुष्य, खरबों पशु, पक्षी कीट पतंग और संखों छोटे जीव तथा असंख्य वनस्पति, जीवन यात्रा कर रहे हैं। ध्यान दीजिये कि यह ट्रेन संखों टन भारी है और अत्यन्त तीव्र गति से चक्कर लगा रही है। इस पृथिवी को चालू हुए १ अरब ९७ करोड़ २९ लाख ४९ सहस्र वर्ष हो चुके हैं परन्तु आज तक इस ट्रेन की कभी चन्द्र या सूर्य्य तथा अन्य किसी नक्षत्र से टक्कर नहीं

लगी। २ अरब वर्ष तक, बिना किसी स्टेशन पर ठहराये या कोयला पानी लिये बराबर दिन रात एक गति से ऐसी अलौकिक गाड़ी का चलाना किसी साधारण बुद्धि वाले का काम नहीं हो सकता। कण्ट्रोलर के थोड़ा सा चूक जाने पर कितना अनर्थ हो जाता है परन्तु हमारी पृथिवी ट्रेन का कण्ट्रोलर कितना सावधान है इस बात का इसी से पता चलता है कि आज तक का इस ट्रेन का इतिहास टक्कर आदि की घटनाओं से सर्वथा शून्य है यदि ज्योतिष के ग्रन्थों तथा यन्त्रों के अनुभवों पर ध्यान दिया जावे तो और भी आश्चर्य होगा। आकाशस्थ ग्रह उपग्रहों का निरीक्षण करने वाले Gist कहते हैं कि सूर्य्य हमारी पृथिवी से १३ लाख गुना बड़ा है और यहां से ९ करोड़ मील की दूरी पर है। विचार कीजिये कि सूर्य्य इतनी दूरी पर स्थित होता हुआ भी पृथिवी पर कितनी गर्मी और प्रकाश फैंक रहा है इस उष्णतावाहक और प्रकाश कारक Heat supplying and light throwing मशीन को आकाश में लटके और अपना कार्य्य करते अरबों वर्ष हो चुके परन्तु एक दिन भी इस मशीन ने आराम नहीं किया, ना ही कभी कोयला या पैट्रोल आदि मांगा। आकाश तत्व वेत्ता कहते हैं कि सूर्य्य के महान् आकर्षण से न केवल पृथिवी और चन्द्र ही अपितु

बृहस्पति और शनि जैसे दूरस्थ महान् ग्रह भी नियम बद्ध होकर अपनी अपनी रेखा में भ्रमण कर रहे हैं। सूर्य्योदय ठीक समय पर होता है। दिन रात और ऋतु देश कालानुसार अपने अपने ठीक समय पर आते हैं। सूर्य्य उत्तरायण और दक्षिणायन में समयानुसार जाता मालूम होता है। इन कामों में १ मिनट का भी न्यूनाधिक्य नहीं होता सूर्य्यग्रहण और चन्द्रग्रहण तथा अन्य नक्षत्रों का उदयास्त होना किसी विशेष गणित के नियमों का प्रमाण देता है। सूर्य्य मण्डल के अतिरिक्त और अनेकों सूर्य्य तथा उनके ग्रह उपग्रह और पृथिवियें हैं जो अपने २ सौर्य मण्डल में नियमवद्ध होकर भ्रमण कर रहे हैं। इनमें से कई तारे हमारे सूर्य्य से भी लाखों गुणा बड़े हैं। और आकाश में बड़े भारी वेग से अपने ग्रहों को साथ लेकर गति कर रहे हैं। अत्यन्त दूर होने के कारण कई तो बहुत छोटे दिखाई देते हैं और कई एक २००इंच की बड़ी दूरवीक्षण से ही दिखाई देते हैं। उत्तरीय ध्रुव तथा दक्षिणीय ध्रुव के ग्रहों का नियन्त्रण ऐसे अद्भुत ढंग से हो रहा है कि जिससे Balance में आज तक कोई खराबी नहीं आ सकी।

इन सब रचनाओं और अलौकिक आकर्षणों को ध्यान में रखते हुए हमें कहना पड़ता है कि इस

Well Balanced ब्रह्माण्ड का कोई बुद्धिमान् संचालक है जिसने सूर्य्यादि नक्षत्रों को इतने कठोर नियमों में निबद्ध कर रखा है कि किसी में भी नियमों को तोड़ने की शक्ति नहीं है। सचमुच आकाश में गति करने वाले तारागणों के सम्बन्ध में जितना ध्यान दिया जावे उतनी ही ईश्वर के विषय में श्रद्धा उत्पन्न होने लगती और उसकी शक्ति के आगे नम्रता से सिर झुकने लगता है। तात्पर्य यह है कि यदि ईश्वर न होता तो आकाश में नक्षत्र कभी भी भ्रमण न कर सकते अपितु परस्पर टकराकर चकनाचूर हो जाते। परन्तु ऐसा नहीं है अतः नक्षत्रों को गिरने और टकराने से बचाने वाला कोई न कोई ईश्वर अवश्य है।

चौथी युक्ति

भाषा व्यवहार से ईश्वर का अनुमान

श्री उदयनाचार्य अपनी इस युक्ति का स्वयम् प्रवचन करते हुए लिखते हैं कि—

यदेतत्—पटादिनिर्माणनैपुण्यं कुविन्दादीनां वाग्व्यवहारश्च व्यक्तवाचां, लिपितत्क्रमव्यवहारश्च बालानां, स सर्वःस्वतन्त्र पुरुषविश्रान्तो व्यवहा-

रत्वात् । निपुणतरशिल्पिनिर्मितापूर्वघटघटनानैपुण्यवत्, चैत्रमैत्रादिपदवत्, पत्राक्षरवत्, पाणिनीयवर्णनिर्देशक्रमवच्चेति ॥

"जुलाहा आदि कारीगरों का वस्त्रादि निर्माण करने का कौशल, मनुष्यों का भाषा बोलना तथा शब्दों का लिपिबद्ध करके लिखना और बालक आदि को सिखाना, यह सब बातें किसी स्वतन्त्र चेतन पुरुष विशेष द्वारा ही प्रचलित हो सकती हैं क्योंकि जो भी व्यवहार होता है वह किसी न किसी गुरु से सीखा जाता है जैसे सिद्धहस्त शिल्पी द्वारा बनी हुई किसी चीज़ का बनाना सीखने के लिये उस सिद्धहस्त शिल्पी के पास जाना और ध्यान लगा कर उस शिल्पकला का अभ्यास करना, वृद्ध लोगों से सुन कर चीज़ों या लोगों के 'चैत्र' 'मैत्र' आदि नामों को सीखना और व्यवहार करना, लेखन कला सीखने के लिये किसी उत्तम लेखक से शिक्षा प्राप्त करना तथा पाणिनीय व्याकरण के समान वर्णनिर्देश का रचना क्रम सीखना इत्यादि" ।

भाषा का बोलना अथवा लिखना मनुष्य के मस्तिष्क की उपज नहीं हो सकती । सभी जानते हैं कि जहां बोया जाता है वहां ही काटा जाता है, जहां बोया नहीं जाता

वहां से कुछ काटा भी नहीं जाता, तथा जो चीज़ बोई जाती है वही काटी जाती है। इसकी सत्यता इस से भी सिद्ध होती है कि जो जन्म से बहिरा होता है वह गूंगा भी अवश्य होता है क्योंकि जब कानों में कुछ शब्द नहीं पड़ा तो जिह्वा से उच्चारण कैसे निकल सकता है। बच्चे के कानों में जिस भाषा के शब्द पड़ते हैं, बच्चा उसी भाषा को बोलने लगता है तथा जो लिपि उसे सिखाई जाती है उसी लिपि में वह लिखने लगता है। आज संसार में सैंकड़ों भाषायें और बीसियों लिपियें हैं जिन में मनुष्यों का भाषण तथा लेखन व्यवहार होता है। बन्दर को मनुष्य जाति का पिता मानने वाले विकासवादी Evolutionists कहते हैं कि भाषा मनुष्य ने स्वयं बनाई है परन्तु हम कहते हैं कि मनुष्य में भाषा रचने की स्वाभाविक योग्यता ही नहीं है। भाषा रचना तो दूर रहा मनुष्य बिना सिखाये अपने पैरों पर भी खड़ा नहीं हो सकता। कई स्थानों पर भेड़ियों द्वारा उठाये गए बच्चों को देखा गया। वह अपने पैरों पर खड़े भी नहीं हो सकते थे किन्तु भेड़ियों के समान चारों टांगों से दौड़ते थे। भाषा भी उनकी लैटिन या अंग्रेज़ी अथवा हिन्दी या गुजारती आदि नहीं थी किन्तु भेड़िये की तरह ही गुर्राते थे। बादशाह अकबर, दूसरे फ्रेड्रिक तथा चौथे जेम्स ने भारत तथा यूरोप में मनुष्य की स्वाभाविक

भाषा का पता लगाने के लिये उद्योग किये। मनुष्य के दो तीन मास के दूध मुंहे बच्चों को सर्वथा निर्जन बन में एकान्त स्थान पर रखा गया। दूध पिलाने वालों को ताकीद की गई कि बच्चों से कोई बात न करें और नाहीं उनके कानों में मनुष्य का कोई शब्द पड़ने पावे। इस विषय में बड़ी कड़ी निगरानी से काम लिया गया। जब यह बच्चे दस पन्द्रह वर्ष के होगये तो राजसभा में लाये गये। सभी जनता को देख कर महान् आश्चर्य हुआ कि मनुष्य के यह बच्चे युवा होनें पर भी ना तो फारसी बोलते थे ना लैटिन या अंग्रेज़ी आदि ही। हां, चूं चूं या कूं कूं ही करते थे क्योंकि यह शब्द ही उनके कानों में पड़ते थे। दूध पिलाने या भोजन खिलाने वाले जब किवाड़ खोल कर उनके पास जाते तो किवाड़ों में से यही चूं चूं या कूं कूं के शब्द निकला करते थे और यही नियम है कि जो कान में पड़ता है वही जिह्वा से निकलता है। यदि मनुष्य की कोई अपनी स्वाभाविक भाषा होती तो इन राजकीय परीक्षणों से अवश्य प्रकट होती, परन्तु नहीं हुई और ना कभी सिद्ध हो सकती है। अब प्रश्न यह है कि मनुष्य को भाषा का व्यवहार किसने सिखाया ?

भारतीय तत्वदर्शियों ने इस प्रश्न पर पर्याप्त विचार किया है। विचार करने के अनन्तर उनकी यह धारणा

है कि भाषा को सीखने के लिये मनुष्य स्वभावतः पराधीन है पशु पक्षियों में उड़ना, तैरना और अपनी २ बोली बोलना आदि गुण स्वभावतः समयानुसार प्रकाशित हो जाते हैं परन्तु मनुष्य में यह स्वभाव नहीं है कि वह माता पिता आदि के संसर्ग के बिना अपनी २ भाषा बोल सके या विशेष रहनसहन धारण कर सके बिना सिखाये पैरों पर सीधा खड़ा हो सके, अपना नाक मुंख साफ कर सके, वस्त्र पहन सके अथवा गृहनिर्माण या अन्य कला का प्रकाश कर सके। अतः वर्तमान सभ्य व्यवहार को देखते हुए यह स्वीकार करना पड़ता है कि सृष्टि की उत्पत्ति के समय जिसने मनुष्यों का शरीर उत्पन्न किया उसीने मनुष्यों को बोलना सिखाया और भाषा दी तथा अन्य आवश्यक कलायें सिखाईं।

महर्षि पतञ्जलि योग सूत्रों में लिखते हैं कि—

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

वह ईश्वर, सृष्टि के आदि के पूर्वजों का भी गुरु है क्योंकि ईश्वर ही ऐसा शिक्षक है जो काल की मर्यादा (आदि-अन्त) वाला नहीं है।

हमको जो भाषा अथवा सभ्यता प्राप्त हुई है वह अपने पूर्वज गुरुजनों से हो मिली है और उनको उनके

पूर्वजों से प्राप्त हुई है। हम हमारे पूर्वज तथा उनके भी पूर्वज और उनके पूर्वज आदि अन्त वाले अर्थात् जन्म मृत्यु वाले थे जैसे कि हम हैं। जिस प्रकार हमको सभ्यता और भाषा के लिये किसी जानकार गुरु की शिक्षा की आवश्यकता है उसी प्रकार सृष्टि के आदि पूर्व पुरुषों को भी गुरु की आवश्यकता थी। वह आदि गुरु कोई पुरुष (मनुष्य) तो हो नहीं सकता क्योंकि आदि में कोई मनुष्य नहीं था अतः अनादि अनन्त परमेश्वर ही उनका गुरु था और उसी आदि गुरु, गुरुजनों के भी गुरु परमेश्वर ने मनुष्यों को भाषा तथा सभ्यता का उपदेश दिया।

जैसे वेद स्वयं कहता है—

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्विदन ऋषिषु प्रविष्टाम्। तामाभृत्या व्यदधुः पुरुषा सप्तरेभाः अभिसंनवन्ते ॥

ऋग्वेद

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रंय त्प्रैरत नामधेयं दधानः यदेषां श्रेष्ठं यदरि प्रमासीत्प्रेणातदेषांनिहितं गुहाविः ॥

ऋग्वेद

अर्थ—सृष्टि के आरम्भ में जब मनुष्यों के लिए वाणी प्राप्ति का समय आता है जबकि वस्तुओं के नाम भी नहीं रखे गये थे तो परमात्मा अनकूलता से ऋषियों के हृदय में पवित्र वाणी का संचार करता है जिसकी सात स्वर और सात छन्द स्तुति करते हैं।

सृष्टि का आदि अर्थात् उत्पत्ति मानना सर्वथा युक्ति युक्त है। किसी भी प्रकार से सृष्टि की उत्पत्ति को अयुक्ति युक्त या युक्ति विरुद्ध नहीं सिद्ध किया जा सकता। हम पहिले लिख आये हैं कि जगत् में परिवर्तन है अतः इस की उत्पत्ति अवश्य हुई है और नाश भी अवश्य होगा। इसीलिये जब इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई है तो आदि पुरुष भी बिना माता पिता के उत्पन्न हुए और उनको भाषादि व्यवहार भी बिना गुरु (मनुष्य) के प्राप्त हुआ। यद्यपि इस छोटी सी पुस्तक का उद्देश्य सृष्टि की मीमांसा करना नहीं है तथापि ईश्वर सिद्धि का जहां तक सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बन्ध है वहां तक हम इसकी विवेचना कर सकते हैं। सृष्टि की आदि में मनुष्यों का माता पिता तथा गुरु ईश्वर ही था, कोई मनुष्य नहीं था। इस विषय में भी कई लोग ऋषि दयानन्द को भला बुरा कहा करते हैं। हमारी प्रार्थना है कि वह लोग महर्षि कणाद के प्रसिद्ध सूत्र—"शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजञ्चेति धर्मविशेषाच्च,

वेद लिंगांच" इत्यादि वैशेषिक वाक्यों और उस पर प्रशस्तपादभाष्य, श्री शंकर मिश्र के उपस्कार, आचार्य श्रीधर की 'न्यायकन्दली' तथा श्री उदयनाचार्य की 'किरणावलि' की ओर ध्यान आकर्षित करें जिनमें अद्भुत युक्ति कौशल से सिद्ध किया है कि सृष्टि के आदि में जो मनुष्य उत्पन्न हुए और उनको भाषादि व्यवहार का ज्ञानोपदेश परमेश्वर ने ही दिया था। जो लोग उपरोक्त ग्रंथों का आलोडन न कर सकें उनकी जानकारी के लिये 'न्याय कुसुमाञ्जलि' का एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा।

प्रमायाः परतन्त्रत्वात् सर्गप्रलय सम्भवात्।
तदन्यस्मिन्ननाश्वासान्न विधान्तरसम्भव ॥२·१॥
वर्षादिवद्भवोपाधिर्वृत्तिरोधः सुषुप्तिवत्।
उद्भिद्वृश्चिकवद्वर्णाः मायावत् समयादयः ॥२·२॥

"शाब्दी प्रमा अर्थात् भाषा व्यवहार का ज्ञान मनुष्यों को स्वतः स्वभाव सिद्ध नहीं है अपितु किसी स्वतन्त्र चेतन द्वारा ही हो सकता है। सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय निश्चित है अतः सृष्टि के आदि में मनुष्यों को ज्ञान उपदेश करने वाला कोई स्वतन्त्र चेतन अवश्य मानना चाहिये। वह चेतन कोई मनुष्य नहीं हो सकता क्योंकि उस समय

कोई मनुष्य नहीं था जिससे आदि मनुष्यों की उत्पत्ति मानी जाय और उससे उनको भाषादि का ज्ञानोपदेश प्राप्त होना स्वीकार किया जावे। कोई सिद्ध मनुष्य भी उस समय मनुष्यों का गुरु नहीं माना जा सकता क्योंकि उसको सिद्धि का मार्ग बतलाने के लिये किसी अन्य सिद्ध की अवश्य आवश्यकता रहेगी तथा कुछ काल भी अनुष्ठान में अपेक्षित होगा परन्तु सृष्टि के आदि में यह सब असम्भव है। अतः मनुष्यों की उत्पत्ति बिना मनुष्य माता पिता के हुई और उनको ज्ञानोपदेश तथा भाषादि व्यवहार की शिक्षा भी बिना किसी मनुष्य गुरु के प्राप्त हुई। उनका शरीर बनाने वाला और उनको भाषा सिखाने वाला उस समय सिवाय ईश्वर के और कोई नहीं माना जा सकता इसलिये उस समय की उचित व्यवस्था चलाने के लिये ईश्वर को अवश्य मानना चाहिये क्योंकि ईश्वर की सत्ता पर विश्वास किये बिना कोई दूसरा मार्ग नहीं हो सकता। बिना माता पिता के मनुष्यों की उत्पत्ति सिद्ध करने के लिये 'उद्भिद्वृश्चिकवद्वर्णाः' अनेकों बनस्पतियों और वृश्चिक आदि का दृष्टान्त दिया जा सकता है। अनेकों घास और जड़ी बूटी वर्षा में बिना बीज के उत्पन्न होती हैं। गोबर के अन्दर से बिना माता पिता के बिच्छू आदि जन्तु पैदा हो जाते हैं। यह ऐसी घटनायें हैं जिन से प्रत्येक व्यक्ति

परिचित है। जिस प्रकार गोबर से बिच्छू तथा पृथिवी से घास और जड़ी बूटी पैदा हो जाती है उसी प्रकार सृष्टि के आदि में मनुष्य, पशु पक्षी आदि के जोड़े पैदा होते हैं। उसके पश्चात् माता पिता से उत्पत्ति का नियम प्रचलित होता है। आज भी इस नियम की परीक्षा की जा सकती है। पहिले बिच्छू बिना माता पिता के केवल दही-गोबर मिलाने से पैदा हो जाते हैं उसके पश्चात् यह बिच्छू मिलकर सन्तान उत्पत्ति करते हैं। इस सन्तान से अन्य बिच्छू पैदा होते हैं। पहिली बनस्पतियें बिना बीज के पैदा होती हैं परन्तु उसके पश्चात् बीज से बनस्पतियों की उत्पत्ति होने का नियम लागू हो जाता है। इसी प्रकार पहिली आग बिना अग्नि के, केवल अरणियों के संघर्ष से पैदा की जाती है और उसके पश्चात् आग से आग की उत्पत्ति का नियम चालू होता है। जिस प्रकार गोबर में आदि बिच्छू के शरीर रचने को तथा पृथिवी में आदि बनस्पति के बनाने की और अरणियों में आदि अग्नि को प्रकाशित करने की सामग्री विद्यमान होती है उसी प्रकार सृष्टि के आदि पुरुषों का शरीर रचने की पृथिवी में योग्यता होती है क्योंकि जिन परमाणुओं से शरीर बनता है वह परमाणु नई पृथिवी में प्रसुप्त अवस्था में होते हैं और पृथिवी की आन्तरिक गरमी से परिपुष्ट होते रहते हैं।

इस प्रकार जितनी गरमी माता के गर्भ में आवश्यक होती है उतनी ही गरमी धरती माता के गर्भ में उन आदि पुरुषों के शरीरों को मिल जाती है और शरीर बन जाते हैं। ऐसा मानने से सब व्यवस्था ठीक हो जाती है।"

"यदि कहा जावे कि आज कल भी बिना माता पिता के मनुष्यों की उत्पत्ति क्यों नहीं होती तो इस का समाधान यह है कि "काल विशेष नियतत्वात् कार्यविशेषाणाम" विशेष विशेष कार्यों के लिये विशेष विशेष काल की आवश्यकता का नियम है। वर्षा ऋतु में धान पैदा होते हैं तो क्या हेमन्त ऋतु में भी होने चाहियें? जो फल फूल अथवा अन्न या रहन सहन जिस ऋतु से सम्बद्ध है वह उसी ऋतु में होता है, दूसरी ऋतु में नहीं। इसी प्रकार सृष्टि का आदि जब २ आता है या आवेगा तब २ ही बिना माता पिता के मनुष्य आदि की उत्पत्ति होती है आज कल नहीं हो सकती क्योंकि आदि काल में मनुष्य नहीं होते इस लिये उस समय बिना माता पिता के उत्पत्ति का नियम है और जब मनुष्य आदि उत्पन्न हो चुके तो उस समय माता पिता से उत्पत्ति का नियम ही ठीक है, यदि आज कल भी मनुष्य और गौआदि पशुओं की उत्पत्ति बिना माता पिता के होने लगे तो महा अन्धेर मच जाय और अनेक प्रकार की संकरता होने लगे इस लिये आदि सृष्टि का नियम वर्तमान

काल पर कदापि लागू नहीं हो सकता"।

"मनुष्यों को आदि सृष्टि में भाषा का ज्ञान भी ईश्वर ही देता है। जैसे कुशल कारीगर यन्त्रों से काम लेता है और यन्त्र उसकी इच्छानुसार कार्य्य करते हैं ठीक उसी प्रकार आदि पुरुष भी ईश्वर की हार्दिक प्रेरणा के अनुसार बोलने और आने जाने आदि का व्यवहार करते हैं, इत्यादि "ततो लोकोत्तरः सर्वानुभावी सम्भाव्यते" इससे सिद्ध होता है कि कोई लोकोत्तर (बिना शरीर का उपदेष्टा) सर्वानुभावी (सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्) परमेश्वर है जो आदि मनुष्यों को उत्पन्न करके उन को भाषादि व्यवहार का ज्ञानोपदेश देता है"।

उपरोक्त उद्धरण श्री उदयनाचार्य के अपने व्याख्यान का भावानुवाद है। इन भावों पर विचार करते हुए हमें कहना पड़ता है कि भाषा व्यवहार का आदि गुरु ईश्वर है उसी ईश्वर ने आदि सृष्टि के पूर्वजों को जहां बिना माता पिता के शरीर दिये वहां बिना मनुष्य गुरु के भाषा का बोलना और लिखना सिखाया तथा आवश्यक शिल्प 'गृहनिर्माण' बर्तन और लकड़ी के घरेलू सामान बनाना, वस्त्र बुनना, भोजन बनाना तथा खेती बाड़ी की प्रारम्भिक मूल शिक्षायें दीं, जिनको प्राप्त करके आदि पूर्वजों की सन्तान ने क्रमशः उन्नति की। आज भी वह क्रमिक उन्नति

बराबर लगातार जारी है और सभ्यता की अनेकों प्रतिकृतियें भूमण्डल में फैली हुई हैं तथा अनेक प्रकार के कला कौशल प्रचलित हो रहे हैं। अतः इन सब शाखाओं और भाषाओं का आदि स्रोत कोई आदि गुरु अवश्य होना चाहिये जो मनुष्य जाति को उन्नति के मूलमन्त्र का उपदेश करे। वह आदि गुरु और मन्त्रोपदेशक परमेश्वर है।

पाचवीं युक्ति

विश्वास से ईश्वर का अनुमान

पांचवीं युक्ति का प्रवचन करते हुए श्री उदयनाचार्य जी लिखते हैं कि–

प्रत्यय शब्देनात्र समाश्वासविषयप्रामाण्य-मुच्यते। तथा च प्रयोगः। आगमसम्प्रदायोऽयं कारणगुणपूर्वकः, प्रमाणत्वात्, प्रत्यक्षादिवत्। न हि प्रामाण्यप्रत्ययं विनाक्काचित् समाश्वासः। नचासिद्धस्य प्रामाण्यस्य प्रतीतिः। न च स्वतः प्रामाण्यमित्यावेदितम्। न चनेदं प्रमाणम्, महाजनपरिगृहीतत्वादित्युक्तम्। न चासर्वज्ञो

धर्माधर्मयोः स्वातन्त्र्येण प्रभवति । न चासर्वज्ञ-स्य गुणवत्तेति निःशंकमेतत् ।

यहां 'प्रत्यय' शब्द से जो पांचवीं युक्ति दी गई है उसका अर्थ वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर दृढ़ विश्वास है। अनुमान का प्रयोग इस प्रकार है। वैदिक धर्म का प्रवाह किसी न किसी बुद्धिमान् चेतन द्वारा चलाया गया है, प्रमाण होने से, जैसे प्रत्यक्षादि प्रमाण, जो जो भी दृढ़ विश्वास है वह किसी न किसी यथार्थप्रमाण द्वारा ही उत्पन्न होता है क्योंकि यथार्थप्रमाण के निश्चय के विना कहीं भी विश्वास नहीं हो सकता है, ऐसा कोई भी विश्वास नहीं हो सकता जो यथार्थ प्रमाण से उत्पन्न होकर भी असिद्ध, निर्मूल या निराधार अथवा निरा झूट हो। न ही यह कह सकते हैं कि वह विश्वास, बिना किसी बुद्धिमान् चेतन के अपने आप प्रचलित हो गया है। यह भी नहीं कह सकते कि यह विश्वास मानने योग्य नहीं है क्योंकि यदि इसका प्रमाण स्वीकार करने योग्य न होता तो बड़े बड़े विचार शील और तर्कनिपुण विद्वान् कभी इसका ग्रहण न करते परन्तु उन्हों ने बड़ी श्रद्धा से विश्वास को सचाई स्वीकार की है। किसी भी मनुष्य में स्वाभाविक योग्यता नहीं है कि वह ईश्वरीय सहायता के बिना धर्म-अधर्म का स्वतन्त्रता

से विवेचन कर सके। संसार में धर्म-अधर्म और कर्म फल में विश्वास प्रचलित है। अतः इस धर्माधर्म का ज्ञान कराने वाला और परलोक का विश्वास दिलाने वाला कोई स्वतन्त्र चेतन अवश्य मानना चाहिये। वह स्वतन्त्र चेतन, सर्वज्ञ ईश्वर ही हो सकता है।

संसार के किसी भी भाग में चले जाइये और किसी भी जाती का रहन सहन या रस्मोरिवाज को देखा जाय। वहां धर्माधर्म का विवेक अवश्य देखने में आयगा तथा अपने २ विचार के अनुसार किसी न किसी अलौकिक सत्ता में विश्वास भी अवश्य विद्यमान् होगा सभ्यता के उच्चतम शिखर पर चढ़ी हुई आर्य्य जातियों में अत्यन्त परिष्कृत रूप में तथा अनार्य्य जातियों में विकृत रूप में आज भी "विश्वास" सर्वत्र प्रतीत हो रहा है। यदि यूरोप और भारत में धर्म के उत्कृष्ट रूप का दर्शन मिलता है तो अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में निकृष्ट रूप देखने में आता है, कालभेद से एक वैदिक धर्म ही स्थान स्थान पर अनेक रूपों में होगया है और जिस प्रकार भाषायें अनेक हो गई परन्तु मूल सब का संस्कृत भाषा है इसी प्रकार वैदिक धर्म सब धर्मों, सब मतों का आदिमूल है।

एतिहासिक दृष्टि से यह प्रमाणित हो चुका है कि संसार के पुस्तकालय में सबसे प्राचीन पुस्तक 'वेद' है

इसीसे यह भी सिद्ध हो चुका है कि वैदिक धर्म ही सब से प्राचीन धर्म है, मैक्समूलर आदि यूरोपीय विद्वान् द्वारा The Science of Language तथा The Sacred Books of the East इत्यादि संसार प्रसिद्ध पुस्तकों में इस विषय पर भरपूर प्रकाश डाला गया है और वैदिक सिद्धान्तों का सहर्ष अनुमोदन कर गए हैं। जिससे यह निश्चय होता है कि धार्मिक विश्वास भी मनुष्य के मस्तिष्क की उपज नहीं है किन्तु किसी सर्वज्ञ और स्वतन्त्र चेतन द्वारा मनुष्य को आदिसृष्टि में प्राप्त हुआ है। हम पहले लिख आये हैं कि आदि भाषा ईश्वर प्रदत्त है क्योंकि मनुष्य में भाषा रचने की स्वाभाविक योग्यता नहीं है इसी प्रकार धार्मिक विश्वास का मूल भी ईश्वर ही है क्योंकि मनुष्य में विश्वास को प्रकट करने की स्वाभाविक योग्यता नहीं है। जो व्यक्ति इस बात को स्वीकार न करते हों वह अपने सन्तोष के लिये इसकी परीक्षा कर सकते हैं। यूरोप और अमेरिका में तो कई परीक्षण हो चुके हैं परन्तु यहां कोई करना चाहे तो यहां भी कर सकता है और देख सकता है कि मुसलमान का बालक विना इस्लामी शिक्षा और अरबी पढ़ने तथा इस्लामी विचारों के सम्पर्क के स्वभाव से मुसलमान सिद्ध होता है या शिक्षा दीक्षा और रहन सहन में इस्लामी सम्पर्क की आवश्यकता चाहता है। यदि मुसलमान का बालक

स्वभाव से मुसलमान होता तो बिना इस्लामी शिक्षा और सम्पर्क के होता, परन्तु बिना सम्पर्क के नहीं होता इसलिये इस्लामी विश्वास मनुष्य को स्वभाव से प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार ईसाई, पारसी, जैन, बौद्ध तथा हिन्दू आर्य्य आदि प्रचलित विश्वास भी मनुष्य को स्वभाव से उपलब्ध नहीं होते किन्तु जिस किसी विश्वास के सम्पर्क में मनुष्य आता है उसी विश्वास को अच्छा मानने लगता है या विचार शील होकर अथवा किसी कारणवशात् उस विश्वास को त्याग कर अन्य मत पर विश्वास करने लगता है।

मुसलमानों को इस्लाम का विश्वास 'हज़रत मुहम्मद' ने दिलाया। हज़रत मुहम्मद से पहिले अरबस्थान में यहूदी, पारसी, ईसाई तथा वाममार्ग के मत प्रचलित थे। ईसाईयों को ईसाई मत का विश्वास 'हज़रत ईसा' ने दिलाया। हज़रत ईसा से पहिले पालिस्थान अर्थात् पैलिस्टाईन में हज़रत दाऊद का यहूदी मत, चार्वाक का वाममार्ग प्रचलित था। हज़रत दाऊद से पहिले पैलिस्टाईन में बौद्धमत की शाखाएं प्रचलित थीं तथा वाममार्ग भी था बौद्धों को बौद्धमत का विश्वास महात्मा बुद्ध ने दिलाया। महात्मा बुद्ध से पहिले जैन, पारसी, वाममार्ग तथा वैदिक मत प्रचलित थे। पारसियों को पारसीमत का विश्वास महात्मा जरदष्टि-ज़रदुश्त ने दिलाया और अग्निहोत्र, गौ

रक्षा तथा अथर्ववेद का पठन पाठन प्रचलित किया। महात्मा ज़रदुश्त के साथ महर्षि व्यास का शास्त्रार्थ वाल्हीक नगर-बलख़ में हुआ था महर्षि व्यास के समय में केवल तीन मत थे वैदिक धर्म, जैन और वाममार्ग। वास्तव में जैनधर्म और वाममार्ग कोई स्वतन्त्र मत नहीं हैं किन्तु वैदिक सनातन धर्म की विकृत शाखाएं हैं महर्षि व्यास से कुछ काल पहिले श्री अर्हत्मुनि ने जैनमत को फैलाया और वृहस्पति ने चार्वाक या वाममार्ग को फैलाया। महर्षि व्यास से पहिले गौतम और कणाद के समय में एक मात्र वैदिक धर्म ही प्रचलित था किसी दूसरे मत की गंध भी पृथिवी तल पर नहीं थी। इस प्रकार संसार के कुल मत मतान्तर केवल ७००० वर्ष के अन्दर के हैं और इन सब का आदि मूल वैदिक धर्म है जिसका मूल वेद है और इसी लिये इस वैदिक विश्वास की आयु वही है जो वेद के प्रकाश की अथवा सृष्टि की है अर्थात् १ अरब सत्तानवें करोड़ उनतीस लाख, उनचास हज़ार वर्ष। अतः जिस ईश्वर ने सृष्टि रची और जिस की सत्ता से इस ब्रह्माण्ड की रक्षा हो रही है, उसी परमेश्वर द्वारा विश्वासों का मूल, सत्यासत्य और धर्माधर्म का विवेचन कराने वाला वैदिक धर्म प्रकाशित हुआ। किसी भी मनुष्य में विश्वास का आविष्कार करने की योग्यता नहीं इसलिये किसी स्वतन्त्र सर्वज्ञ चेतन को

अवश्य मानना चाहिये जो मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग बतावे और अच्छे बुरे तथा धर्माधर्म का विवेक करावे वह सर्वज्ञ और स्वतन्त्र चेतन ईश्वर ही है।

यदि ईश्वर न होता तो संसार में धार्मिक विश्वास और आध्यात्मिक उन्नति के विचार प्रचलित न होते परन्तु संसार में धार्मिक विश्वास है और आत्मिक उन्नति के विचार प्रचलित हैं अतः इस सब का आविष्कर्ता कोई न कोई ईश्वर अवश्य है।

छटी युक्ति

वेद से ईश्वर का अनुमान

यजुर्वेद में कहा गया है कि—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो।
विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्॥
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै।
द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥

श्री उदयनाचार्य जी अपनी "न्याय कुसुमाञ्जलि" में

इस वेद मन्त्र की अत्युत्तम व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि–

"अत्र प्रथमेन सर्वज्ञत्वं, चक्षुषा दृष्टेरुपलक्षणत्वात् । द्वितीयेन सर्ववक्तृत्वं, मुखेन वागुपलक्षणात् । तृतीयेन सर्वसहकारित्वं, बाहुना सहकारित्वोपलक्षणात् । चतुर्थेन व्यापकत्वं, पदा व्याप्तेरुपलक्षणात् । पञ्चमेन धर्माधर्मलक्षणप्रधानकारणत्वं, तौ हि लोकयात्रावहनात् बाहू । षष्ठेन परमाणुरूपप्रधानाधिष्ठेयत्वं, ते हि गतिशीलत्वात् पतत्र व्यपदेशाः पतन्तीति । संधमति सं जयनयान्निति च व्यवाहितोपसर्गसम्बन्धः । तेन संयोजयति समुत्पादयन्नित्यर्थः । द्यावा इत्यूर्ध्वसप्तलोकोपलक्षणं, भूमीत्यधस्तात्, एक इत्यनादितेति ॥"

"ईश्वर की सब ओर आंख है आंख ज्ञान का कारण है अतः 'विश्वतश्चक्षु' का अर्थ है सर्वज्ञ । मुख का काम बोलना है अतः 'विश्वतोमुख' सब ओर मुख वाला का अर्थ है सबको अन्तरात्मा से प्रेरणा कर उपदेश देने वाला । बाहु

सहायता का काम करते हैं अतः विश्वतो बाहु का अर्थ है सब कार्य्यों का सहकारी कारण। विश्वतस्पात् का अर्थ है सर्वव्यापक क्योंकि पद् धातु का व्याप्ति अर्थ है और पाद से इसीलिये गति विशेष का कारण समझा जाता है। इस प्रकार अनादि, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सर्वहितकारी और सर्वव्यापक परमेश्वर अपनी दोनों बाहु से परमाणुओं को संयुक्त कर सृष्टि रचता है और ऊपर नीचे के १४ लोकों का बुद्धिमत्ता से निर्माण करता है। दोनों बाहुओं से तात्पर्य धर्म और अधर्म से है क्योंकि सृष्टि के प्रधान कारण 'धर्म अधर्म' यह दो ही हैं। इनको 'बाहु' इसलिये कहा गया है कि अनेक विध सुख दुःख को लोकयात्रा के लिये वहन करना इनके द्वारा ही हो सकता है यदि जीवों के कर्म धर्माधर्म रूप में विद्यमान् न होते तो ईश्वर सृष्टि को कभी नहीं रच सकता था अतः धर्माधर्म का फल देने के लिये ईश्वर ने सृष्टि रची। सृष्टि के उपादान कारण परमाणु हैं। मन्त्र में उनको 'पतत्र' शब्द से वर्णन किया गया है क्योंकि परमाणु गति स्वभाव वाले हैं और सदा गति करते रहते हैं। 'संधमति' का अर्थ परमाणुओं को एक दूसरे से बुद्धि पूर्वक संयुक्त करना है जिससे सृष्टि नियमबद्ध रह सके 'द्यावा' से ऊपर के सात ग्रह मण्डल और 'भूमि' से नीचे के सात लोकमण्डल समझने चाहियें। इस प्रकार

सारी सृष्टि १४ भुवनों में विभक्त होकर एक ईश्वर द्वारा रची गई है। ईश्वर 'एक' ही है। इससे ईश्वर का अनादित्व सिद्ध किया गया है और यह भी कहा गया है कि ईश्वर को अपने कार्य्य में किसी दूसरे साथी की अपेक्षा नहीं है।"

"ईश्वर एक है, सर्वज्ञ है, कर्म फल प्रदाता है सर्वव्यापक है तथा जगत् कर्ता और सर्वशक्तिमान् है इन बातों का संक्षिप्त पता इस मन्त्र द्वारा लगता है और इसके साथ अन्य अनेकों मन्त्रों का अध्ययन किया जावे तो ईश्वरीय गुणों का विस्तृत विवरण भी वेद में पाया जाता है।

इसके साथ ही वेद हमको यह भी उपदेश देता है कि—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दा ँ सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत् ॥

यजुर्वेद ॥

उस ज्ञानस्वरूप परमेश्वर से ही ऋक्, साम, उत्पन्न हुए, उसी सर्वशक्तिमान् परम पुरुष से अथर्व वेद का प्रकाश हुआ और उसी परमेश्वर से यजुर्वेद की उत्पत्ति हुई।

चारों वेद संहिताओं का अवलोकन करने से यह सिद्ध होता है कि इनकी रचना करने वाला कोई लोकोत्तर बुद्धि वाला पुरुष होना चाहिये। कोई मनुष्य यह अभिमान् नहीं कर सकता कि वेद की रचना मनुष्य कृत है। पुराने

समय से ऋषि मुनि लोग तथा विद्वान् विचारक पृथक् पृथक् गवेषणा और समालोचना करके सहमत होते चले आ रहे हैं कि वेद मनुष्य कृत नहीं है अपितु ईश्वर कृत है, हां यह ठीक है कि उच्चकोटि के मनुष्य ऋषि महर्षि जन वेद मन्त्रों का विचार और प्रचार करते रहे हैं। जैसा कि अद्वितीय वैदिक विद्वान् महर्षि यास्क ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'निरुक्त' में लिखा है कि—

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयः सम्बभूवुः। तेऽसाक्षात्कृतधर्मभ्योऽवरेभ्योमन्त्रान् सम्प्रादुः ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः। (न तु कर्तारः दुर्गाचार्यः)

ऋषियों ने वेद मन्त्रों के यथार्थ तात्पर्य को भले प्रकार समझा और समझने के अनन्तर अन्य लोगों को मन्त्रों के गूढ़ रहस्यों का उपदेश किया। ऋषि तो केवल वेद मन्त्रों को देखने वाले हैं (रचने वाले नहीं दुर्गाचार्य)

जिन ऋषियों ने वेदों का स्वाध्याय और मनन किया है वह कहते हैं कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" सृष्टि की आदि अवस्था से लेकर वर्तमान समुन्नत दशा तक तथा प्रलयकाल तक जो जो अवस्थायें हुई हैं तथा होने वाली हैं, उन सब का विस्तृत वर्णन वेद में

विद्यमान् है। आज जिन विद्याओं को विद्वान् लोग प्रकट कर रहे हैं, उन सब का मूल वेद में देखा जा सकता है। वेद यह बता सकता है कि सृष्टि की पूर्ण आयु चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की है। वेद यह बता सकता है कि ग्रह उपग्रह बड़े २ लोक हैं और विचित्र गति से घूम रहे हैं और इन का संतुलन Balance अत्यन्त बुद्धिमत्ता से हो रहा है। वेद यह बतला सकता है कि जीव कर्मों का फल भोगने के लिये अनेकों योनियों में किस प्रकार भ्रमण करता है। वेद यह भी बता सकता है कि जीवात्मा क्या वस्तु है, जीव का शरीर के साथ क्या सम्बन्ध है तथा शरीर में आने रहने और निकलने के समय क्या क्या अवस्था होती है। वेद यह भी समझा सकता है कि धर्म क्या वस्तु है और अधर्म क्या चीज़ है। न केवल यही किन्तु वेद यह भी बता सकता है कि बन्ध-मोक्ष क्या है और कैसे होते हैं, राज्य कैसे बनते और बिगड़ते हैं, मनुष्य और पशुओं की पूर्ण उन्नति किस प्रकार होती है। इसके साथ ही वेद यह भी बताता है कि वायुयानों द्वारा आकाश में कैसे उड़ा जा सकता है और बड़े बड़े जहाजों द्वारा समुद्र यात्रा कैसे की जा सकती है, कला-कौशल द्वारा सभ्यता की उन्नति किस प्रकार हो सकती है इत्यादि।

इस विषय में जो सज्जन हमारे उपरोक्त कथन की परिक्षा करना चाहें वह वैदिक साहित्य का ध्यान से अवलोकन करें। इस छोटे से निबन्ध में विस्तृत विवरण की ओर जाना विषयान्तर हो जायगा। अतः ग्रन्थ विस्तारभय से अनेकों मन्त्र प्रमाणरूप यहां उपस्थित नहीं किये जा सकते।

यह निश्चय है कि उपरोक्त किसी भी विद्या का प्रकाश सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य की पहुंच से परे की बात है अतः जिस वेद में इतना उच्च ज्ञान है वह पुरुष कृत नहीं किन्तु अपौरुषेय है।

यदि ईश्वर न होता तो संसार में वेद का प्रकाश भी न होता। परन्तु वेद का प्रकाश संसार में है अतः वेद का कर्ता कोई अवश्य होना चाहिये। कोई पुरुष वेद जैसा लोकोत्तर ज्ञानविज्ञानमूलक पुस्तक रचने की शक्ति नहीं रखता इसलिये वेद का रचने वाला कोई मनुष्य नहीं है किन्तु परमब्रह्म परमेश्वर है

हम पहले बल पूर्वक लिख आये हैं कि मनुष्य को जब तक सिखाया या पढ़ाया न जावे तब तक वह कुछ भी नहीं जान सकता ना बोल सकता है ना कुछ समझ सकता है अतः सृष्टि के आरम्भ में बिना ईश्वरीयज्ञान के मनुष्य कुछ भी नहीं समझ सकता था भला जिस परब्रह्म परमात्मा ने इन

अलौकिक आंखों के देखने के लिये सूर्य्य बनाया प्राण रक्षा के लिये वायू, आधार के लिये अन्न और उसको सब सामग्री बनाई उसने मनुष्यों की आत्मोन्नति के लिये मनुष्य को आरम्भ में कोई ज्ञान न दिया हो यह बात समझ में नहीं आ सकती क्योंकि संसार में मनुष्य की उत्तपत्ति का उद्देश्य तो केवल आत्म ज्ञान ही है इससे परे मनुष्य को भगवान् कैसे रख सकता था अतः सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य को ज्ञान भगवान् द्वारा ही प्राप्त हो सकता है इस हेतु से भी जगत कर्ता ब्रह्म की सिद्धि प्रमाणित है।

सातवीं युक्ति

सुख-दुःख से ईश्वर का अनुमान

संसार के अन्दर देखने में आता है कि कोई मनुष्य सुखी है कोई दुःखी, कोई धनी कोई निर्धन, कोई विद्वान् कोई मूर्ख, कोई पूर्ण स्वस्थ, कोई रोगी या अंगहीन, कोई दीर्घायु कोई अल्पायु, कोई पुरुष है तो कोई स्त्री है। न केवल यही किन्तु कोई गौ है तो कोई गधा, कोई कुत्ता है तो कोई बिल्ली, कोई भैंस है तो कोई बकरी है। इसी प्रकार कोयल, कौआ, तोता, मैना, बाज, चील, ऊंट, हाथी,

सिंह, व्याघ्र, शृगाल, तथा मच्छली, सांप, मेंडक, मगर और अनेकों प्रकार के कीट पतंग मच्छर, पिस्सू आदि छोटे बड़े जन्तु देखने में आते हैं। इसके साथ यह भी देखने में आता है कि प्रत्येक योनि के शरीरों की रचना पृथक् पृथक् है और प्रत्येक के भोग भी जुदा जुदा हैं। इससे प्रतीत होता है कि इस अनेक विध रचना का उद्देश्य कर्मफल भोग से भिन्न अन्य कुछ नहीं है।

इसके साथ ही जब हम यह जानते हैं कि कोई भी प्राणी दुःख नहीं चाहता परन्तु दुःख पाता है, सुख चाहता है परन्तु सुख नहीं पाता तो महान् आश्चर्य होता है। यदि सुखी होना और दुःख का पाना, जीव के अपने हाथ की बात होती और अन्य कोई कर्म फल दाता न होता तो सभी प्राणी सुखी होते और संसार में दुःख का लेश भी देखने सुनने में न आता। परन्तु दुःख है और प्रत्येक प्राणी को दुःख है। अब प्रश्न यह होता है कि इच्छा के विरुद्ध जीव को दुःखी कौन करता है, वह कौन शक्तिमान् है जो इच्छा होने पर भी जीवों को सुखी नहीं बनने देता 'कर्म' कह कर पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता क्योंकि कर्म जड़ है और जड़ वस्तु किसी चेतन की सहायता के बिना कभी क्रिया नहीं कर सकती। हम देखते हैं कि चोर चोरी करते हैं या डाकू डाका डालते हैं तो चोरी करके या डाका

डाल कर छिपे फिरते हैं और चाहते हैं कि उनको जेल का कष्ट न मिले। डाका डालने या चोरी आदि करने का कर्म भी उनको बिना किसी द्रष्टा या प्रजा रक्षक के अपने आप जेल या कचहरी में घसीट कर नहीं ले जाता। किसी चेतन (पुलिसमैन और गवाह आदि) के कारण ही कर्म का निपटारा होता है और न्यायधीश के विचार से कर्म करने वाले को दण्ड मिलता है। यदि न्यायधीश न हो तो कर्म का फल केवल 'कर्म' से कभी नहीं मिल सकता। इसलिये संसार के प्राणियों को अनेक प्रकार के कर्म करते देख कर तथा अनेक प्रकार के सुख दुःख भोगते देख कर यह मानना पड़ता है कि जीवों के कर्मों का कोई व्यापक साक्षी अवश्य है जो उनको न्याय नियम के अनुसार सुख दुःख दे रहा है।

सुख दुःख का अस्तित्व प्रत्येक जीव के साथ सम्बद्ध है। चाहे कोई जीव आकाश में हो या पाताल में, जल में हो या स्थल में, गर्भ में हो या पेट से बाहर किसी भी स्थान पर बिना सुख दुःख भोगे कभी नहीं रह सकता। अतः जहां जीव है वहां उसके कर्मों का द्रष्टा 'कर्माध्यक्ष' ईश्वर भी अवश्य विद्यमान् है।

ईश्वर है, इसी लिये जीवों को सुख दुःख का भोग प्राप्त होता है, यदि ईश्वर न होता तो जीवों को सुख दुःख

भी प्राप्त न होता, परन्तु होता है अतः ईश्वर है।

इस के साथ ही यह बात अत्यन्त विचारणीय है कि क्या इतना विस्तृत तथा असीम संसार केवल इसी बात पर अवलम्बित है कि एक मनुष्य उत्पन्न होकर कई प्रकार के पाप और उपद्रव करता हुआ अपने जीवन को विषय विकारों में व्यतीत करने के अनन्तर संसार से चला गया और दूसरा संसार की भलाई और अच्छे कामों में ततपर रह कर इस जीवन यात्रा को समाप्त कर गया और मरने के पीछे इन दोनों का अभाव होगया और इनको कोई कर्म फल न मिला तो यह जगत् बिल्कुल अन्धेर नगरी की भांति हो जायगा और ऐसा मान लेने पर सब मनुष्य पाप की ओर प्रवृत हो जायेंगे यह सिद्धान्त सब मनुष्यों को पाप के गढ़े में गिरा देगा अतः यह मानना प्रत्यक्ष के भी विरुद्ध है क्योंकि संसार में अलौकिक कर्म फल व्यवस्था देखने में आरही है अतः उसको देखते हुए यह बात मानने के लिये विवश होना पड़ता है कि कोई कर्म फल दाता हम से अतिरिक्त ईश्वर है।

इस प्रकार अनेकों युक्तियों से ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है और यह मानने के लिये विवश होना पड़ता है कि-

१. सृष्टि का रचने वाला कोई जगत् कर्ता ईश्वर अवश्य है।

२. सृष्टि की शासन व्यवस्था करने वाला कोई शासक ईश्वर अवश्य है।

३. सूर्य्य चन्द्र, पृथिवी और ग्रह मण्डल को आकाश में विविध गति से भ्रमण कराने वाला कोई बुद्धिमान् संचालक ईश्वर अवश्य है।

४. संसार के पूर्वपुरुषों को भाषादि व्यवहार ज्ञान देकर सभ्यता का उपदेश करने वाला कोई परमेश्वर अवश्य है।

५. धर्म-अधर्म का ज्ञान देकर अन्तः करण में श्रद्धा-भक्ति का विश्वास स्थापित करने वाला कोई मोक्षमार्गदर्शक अन्तर्यामी ईश्वर अवश्य है।

६. संसार की सभी सत्य विद्याओं का वर्णन करने वाले वेदों का प्रकाशक कोई अनन्त विज्ञानशाली सर्वज्ञ ईश्वर अवश्य है।

७. जीवों को अनेक प्रकार का सुख दुःख पहुंचाने वाला कर्मफल प्रदाता सर्वव्यापक कोई ईश्वर अवश्य है।

माऽहं ब्रह्म निराकुर्याम्। मा ब्रह्म निराकरोत्॥

मैं ब्रह्म का निराकरण (खण्डन निरादर) कभी न करूं। ब्रह्म मेरा निराकरण (निरादर) कभी न करे।

इति ईश्वरसिद्धौ अनुमान बाधोद्धारः

ईश्वर विषयक कुछ फुटकर प्रश्न और उनके उत्तर।

प्रश्न—ईश्वर के मानने वाले जितने भी सम्प्रदाय और मत हैं उन सबका ईश्वर की सत्ता और स्वरूप में बड़ा भारी मत भेद है। इससे स्पष्टतया विदित है कि ईश्वर एक निराधार कल्पना है। यदि वास्तव में कोई ईश्वर होता तो दो और दो को सब ही मनुष्य चार कहते हैं, इसी प्रकार सब ईश्वर वादियों का भी एक ही मत होता। अतः इस विरोध से स्पष्ट है कि हौव्वा की तरह ईश्वर भी एक मिथ्या कल्पना है केवल चतुर मनुष्यों ने अपना उल्लू सीधा करने और जनता को अपना अनुगामी बनाने के लिये एक गढ़न्त गढ़ रखी है।

उत्तर—प्रथम हम अनीश्वरवादियों से पूछते हैं कि क्या सृष्टि उत्पत्ति के विषय में आप सब नास्तिकों का एक ही मत है ? क्या नवीन और प्राचीन विज्ञान वेताओं का काल, स्वभाव, शक्ति, प्रकृति और अन्य अभाव वादिओं जैन, बौद्ध, चारवाक, देवसमाजी, साम्य

वादी, विकास वादी आदि अनेक नास्तिक सम्प्रदायों का सृष्टि उत्पत्ति के विषय में भारी विरोध नहीं है ? यह विरोध यहां ही समाप्त नहीं हो जाता। किन्तु नित्य नयें विज्ञानवेता इस विषय में अपना नवीन मत ही उपस्थित करते जारहे हैं। योरुप के नये और पुराने विज्ञान में बड़ा अन्तर है उस पर भी नित्य नया परिवर्तन होता जारहा है। क्या इस इतने बड़े भारी विरोध और अनिश्चित स्थिति को सामने रखते हुए प्रश्न कर्ता नास्तिक महोदय से हम उसके प्रश्नानुसार यह पूछ सकते हैं कि जिस अवस्था में अनीश्वर वादियों का ईश्वर उत्पत्ति के विषय में बड़ा भारी मत भेद है, क्या आप इस विरोध को देखते हुए यह मान लेंगे कि सृष्टि नहीं है ईश्वर के सम्बन्ध में धर्म और सम्प्रदायों में जो मतभेद है उसका विस्तृत विवरण हम इस पुस्तक के दूसरे भाग में करेंगे, यहां प्रश्न कर्ता के सन्तोष के लिये संक्षेप में लिखते हैं।

ईश्वर के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक मतभेद ईश्वर के अस्तित्व ˜ नहीं केवल स्वरूप में है। इस बात के निर्णयार्थ ही हम इस पुस्तक का दूसरा भाग लिख रहे हैं। यहां सबसे प्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि किसी पदार्थ के विषय में मतभेद

होना उसके अभाव का हेतु नहीं हो सकता। यदि प्रत्येक वस्तु में विरोध होने के कारण उसका अभाव मान लिया जाय तो संसार में अनेक पदार्थ ऐसे हैं जिनके विषय में परस्पर मतभेद है।

भूमि को ही लीजिये कोई इसे स्थिर मानता है कोई सूर्य्य के गिर्द घूमती हुई, कोई गोलाकार, कोई चपटी, कोई आकर्षण शक्ति का केन्द्र और कोई उससे रिक्त मानता है। क्या इस मतभेद के कारण भूमि की सत्ता से ही इन्कार कर दिया जावे ? इसी प्रकार सूर्य्य चन्द्र और अन्य लोक लोकान्तरों के विषय में मतभेद है इत्यादि।

मतभेद का यह तात्पर्य नहीं है कि वह वस्तु ही नहीं, हम बल पूर्वक कहेंगे कि ईश्वर के जानने वालों में कुछ भी मतभेद नहीं है। कुछ नवीन मत मतान्तरों की कल्पना से जो ईश्वर के स्वरूप से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। मतभेद दिखाई पड़ता है। जो नीचे लिखी गाथा के सदृश है।

कहते हैं कि किसी मनुष्य ने ५ अन्धों को लेकर कहा कि आओ तुम्हें हाथी दिखायें। सो उसने उनमें से एक को हाथी की टांग दिखादी दूसरे को सूंड, तीसरे को दुम, चौथे को कान पांचवें

को पेट दिखा दिया। जब सब नेत्रहीन इकट्ठे हुए तो इनसे पूछा कि तुम हाथी देख आये हो वह कैसा था टांग देखने वाले ने कहा कि वह खम्भे की तरह है। सूंड वाले ने कहा नहीं बड़े मोटे सांप की तरह होता है। दुम वाले ने कहा चवर की तरह हिलता हुआ होता है कान वाले ने कहा झूठ है हाथी तो पंखे के सदृश है। पेट देखने वाले ने कहा कि यह सब झूठे हैं। हाथी तो मोटे वृक्ष के तने के समान होता है। ठीक इन अन्धों की भांति ईश्वर के विषय में मत मतान्तरों की कल्पना है। प्रश्न कर्ता ने एक अप्रमाणिक बात को लेकर आक्षेप कर दिया है। अतः ऐसा प्रश्न दार्शनिक दृष्टि से निग्रह कोटि में है। क्या कोई मनुष्य किसी गंवार को मुलम्मा देकर बहका दे कि यह सोना है तो उसके कारण सोने की सत्ता से इन्कार करना उचित नहीं है। जैसे दो और दो चार होते हैं। इसी प्रकार आत्मदर्शियों में ईश्वर के विषय में कोई विरोध नहीं है जैसा कि हम इस भाग के अन्त में लिखेंगे।

प्रश्न—ईश्वर ने सृष्टि में तलवार चलवाई और मनुष्यों और पशुओं के खून से सृष्टि के प्रत्येक परमाणु को रंग दिया और रुधिर की नदियां बहा दीं निष्पाप मनुष्यों

का बड़ी निर्दयता पूर्वक वध कराया, और एक को दूसरे का शत्रू बना दिया।

उत्तर–यह केवल भ्रान्ति है। प्रथम हम प्रश्न कर्ता से पूछते हैं, कि आप के पास इस बात का क्या प्रमाण है कि यह लड़ाइयां ईश्वर ने कराईं, जब तक इस बात का स्पष्टीकरण न हो जाय कि इन सब अत्याचारों (लड़ाइयों) का ईश्वर जुम्मेवार है, तब तक निराधार प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक नहीं इसके उत्तर में नास्तिकों की ओर से यह कहा जाता है कि भिन्न २ सम्प्रदायों के प्रवर्तकों ने यही कहा है कि हमें खुदा ने तलवार चलाने का हुक्म दिया है। उनका यह उत्तर भी वैसा ही निर्मूल है जैसा कि उनका प्रश्न।

हम फिर वही बात दोहराते हैं कि आप के पास क्या प्रमाण है कि उनको खुदा ने तलवार चलाने का हुक्म दिया है। आप कहेंगे कि वह लोग ऐसे ही कहते हैं इस उत्तर से तो आपके प्रश्न का सारा रहस्य खुल गया कि आप का प्रश्न कुछ लोगों के कहने पर है निजीतौर पर आपको इसका कुछ ज्ञान नहीं है। सो एक अप्रमाणिक बात पर इतना तूफ़ान खड़ा कर देना सज्जन पुरुषों का काम नहीं है। आप के प्रश्न पर हमें एक घटना याद आई। वह यह

कि ढौंगी मनुष्य नगर नगर में घूमते हैं और भोले भाले गृहस्थियों को धोखा देते हैं कि सब आभूषण ले आवो दुगना सोना बना देंगे और विश्वास के लिये कुछ हेर फेर करके थोड़ा सा सोना बना भी देते हैं इस से प्रभावित होकर गृहस्थी अपने घर के सब आभूषण (कई स्थानों पर ऐसा भी देखा गया है कि पड़ोसियों से भी आभूषण मांग कर) ले आते हैं। वह ठग तो सब आभूषण लेकर चल देता है। यह नहीं सैंकड़ों मनुष्य ऐसे ही धोखा देते और लूटते फिरते हैं। जिस तरह उस गृहस्थी ने सोना बनाने वाले की बात पर विश्वास करके अपना सब कुछ लुटा दिया उसी प्रकार प्रश्न कर्ता महादय ने एक मिथ्या बात पर विश्वास करके सच्चाई और बुद्धि का दिवाला निकाल दिया प्रश्न करने के पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि प्रश्न भी युक्ति और प्रमाण सिद्ध होसकता है या नहीं प्रश्न कर्ता महोदय ने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि उसकी रेत की दीवार समुद्र की एक ही लहर से नष्ट हो जायगी।

जिन लोगों ने ईश्वर के नाम पर तलवार चलाई उसके जुम्मेवार वह स्वयं हैं, ईश्वर नहीं, क्योंकि ईश्वर निष्पाप मनुष्यों पर तलवार चलाने और लूट मार

करने की आज्ञा कदापि किसी को नहीं देता जिन लोगों ने अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये खुदा का नाम लेकर लोगों को वहकाया और तलवार चलाई वही उसके जुम्मेवार हैं खुदा नहीं। इसी प्रकार ही बेज़ुबां पशुओं की हत्या स्वार्थी मनुष्यों की अपनी कल्पना है

जब जिह्वा के रस ने विवश किया तो देवताओं और खुदा के नाम पर इस घृणित कार्य्य को भी लगा दिया खुदा का इस में दखल नहीं मिसाल में यह नियम देखा जाता है कि जब कोई स्वार्थी मनुष्य अपने कार्य्य को सम्पादन करना चाहता है तो इसी प्रकार के बहाने ढूंड लेता है। जिन लोगों के मस्तिष्क में पृथिवी को अपने अधीन करने की इच्छा प्रबल वेग से घूमती है उन्हें स्वार्थ अन्धा कर देता है। वह इस इच्छा की पूर्ति के लिये ऐसी आज्ञायें सुना कर लोगों को अपने वश में करते हैं। यह उनकी अपनी कृति है ईश्वर की नहीं भला जो ईश्वर को नहीं मानते थे और उन्होंने तलवार चलाई उसका कौन जुम्मेवार है? हिरण्यकश्यप और इसी प्रकार के और राजों की तलवार किसकी आज्ञा से चली थी बौद्धों के अत्याचारों का कौन जुम्मेवार है योरुप का १९१४ का महायुद्ध किस खुदा के हुक्म से हुआ

१९३७ में निर्दल इटली को ऐबेसीनियां का सर्वनाश करने के लिये किस खुदा ने हुक्म दिया था इसी प्रकार जापान के कान में १९३८ में किस खुदा ने फूंक मारी थी कि उसने चीन के लाखों आदमियों को विध्वंस कर दिया इस समय १९३९ में रूस को कौन सा खुदाई परवाना मिला था कि वह जर्मन से मिल कर पोलैंड का सर्वनाश करवाए। इसी प्रकार सहस्रों उदाहरण देकर प्रमाणित किया जा सकता है, कि पृथिवी को अपने वश में करने के लिये चतुर मनुष्यों की अपनी चालें हैं या अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिये ईश्वर के नाम का बहाना है वास्तव में सब कार्य्य तो स्वयमेव ही करते हैं और नाम ईश्वर का लगा देते हैं जैसा कि—

खूब हंसी आती है हमको हज़रते इन्सान पर।
फ़ेल बद तो खुद करें लानत करें शैतान पर॥

इसी प्रकार ही उन मनुष्यों का हाल है जिन्होंने स्वार्थ सिद्धि के लिये तलवार चलाई और नाम खुदा का लगा दिया और फिर इस पर प्रश्न कर्ता का भोलापन देखिये इस पर प्रश्न करके बिना प्रमाण ही आसमान सर पर उठा लिया और संसार

भर में शोर मचा दिया कि ईश्वर तलवार चलाता है।

एक भ्रान्ति और उसका निवारण

हम इस बात को स्पष्ट कर देना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं कि अपनी और निर्बलों की रक्षा के लिये तलवार चलाना मनुष्य का परम कर्तव्य है। ऐसा अवसर उपस्थित होने पर अगर कोई मनुष्य चुप रहता है। तो वह पापी है यदि कोई व्यक्ति या जाति अनाधिकार चेष्टा पूर्वक दूसरों के अधिकारों पर आक्रमण करतो है तो अपने अधिकारों की रक्षा और आत्म रक्षा के लिये युद्ध करना सर्वथा उचित्त है। यदि किसी अबला पर गुण्डों ने आक्रमण किया हो तो उन गुण्डों का वध करना सब से बड़ा पुण्य है। जिस प्रकार अन्धे को कुएं में गिरता देखकर चुप रहना पाप है। इसी प्रकार ऐसे अवसरों पर भी चुप रहना पाप है।

प्रश्न-संसार में वस्तु निर्माण के लिये कर्ता को गतिवान होना पड़ता है। इसी के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति के लिये ईश्वर का गतिवान होना आवश्यक है। बिना गति किये संसार नहीं बन सकता और यदि गति

करे तो सर्वव्यापक नहीं रह सकता सर्वव्यापक न रहने से एक देशी होगा एक देशी होने से नित्य और सर्वान्तर्यामी नहीं हो सकता।

उत्तर—जड़ और चेतन दोनों प्रकार के जगत् में एक नियम काम करता हुआ दिखाई देता है। वह यह कि जो चीजें अन्दर से काम करती हैं उनका स्वयमेव गतिवान होना आवश्यक नहीं। उनकी इच्छा से ही कार्य्य सम्पादन होता है। जैसे शरीर को हरकत देने के लिये आत्मा को गति युक्त नहीं होना पड़ता इसी प्रकार परमात्मा सर्वव्यापक होने से बिना गतिवान होते हुए ही सबको गति देता है। प्राकृतिक जगत् में भी भीतर से काम करने वाले पदार्थों की यही अवस्था है जैसे भाफ, विजली, वायर-लैस, टैलीग्राफ इत्यादि। इस बात के अतिरिक्त चुम्बक एक स्थूल वस्तु है वह स्वयं स्थिर होता हुआ भी लोहे को गतियुक्त करता है। सारांश यह कि भीतर से काम करने वाले पदार्थों के लिये स्वयं गति युक्त होना आवश्यक नहीं।

प्रश्न—केवल इच्छा से वस्तुओं का निर्माण कैसे हो सकता है जब तक कि क्रिया न की जाय।

उत्तर–प्राकृतिक जगत् में चेतन की इच्छा से ही वस्तुओं का निर्माण होता है। बिना इच्छा के कोई वस्तु नहीं बन सकती, हां बनाने के लिये साधन का होना आवश्यक है। अभाव से कोई वस्तु भाव में नहीं आ सकती।

परमात्मा के पास प्रकृति विद्यमान है परमात्मा उसके अन्दर व्यापक है। जैसे शरीर में जीव, जैसे शरीर जीव की इच्छा से काम करता है उसी प्रकार प्रकृति परमेश्वर की इच्छा से काम करती है। भला आपको कोई फुलवारी के पास खड़ा करदे और आपसे पूछे कि भिन्न २ फूलों के अन्दर कई प्रकार की चित्रकारी किस चित्रकार की कलम ने की है। एक फूल ही क्या प्रकृति की हर एक वस्तु में आपको यही नियम नज़र आवेगा, स्वप्न में सब इन्द्रियां शान्त होती हैं उस समय मनकी कल्पनाओं का प्रभाव इन्द्रियों पर पड़ता है कई बार मन भयानक वस्तुओं को दिखाता है तो मनुष्य स्वप्न में रोने लग जाता है कभी हंसता है। समाधि अवस्था में जब कि इन्द्रियों के साथ मन भी शान्त हो जाता है उस समय आत्मा अपनी सत्ता और ब्रह्म के अस्तित्व को बिना इन्द्रियों के

अनुभव करता है, चेतन वस्तुओं के लिये यह नियम है कि वे इच्छा मात्र से काम करती हैं जबकि स्थूल वस्तुएं साधनों से काम करती हैं।

प्रश्न—ईश्वर को दुनिया बनाने की क्या आवश्यकता थी और फिर संसार बनाकर उसमें पाप फैलाने की क्या आवश्यकता थी।

उत्तर—ईश्वर ने सृष्टि को जीवों की भलाई के लिये रचा है। जैसे उन्नतिशील मनुष्य अपने बच्चों के लिये शिक्षणालय बनाते हैं इसी प्रकार ईश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है उनके अपवर्ग के लिये सृष्टि का निर्माण करता है और अपनी दया से मनुष्य आदि के जीवन के साधन बनाता है। जिस प्रकार शिक्षणालय बनाने वालों के मस्तिष्क में विद्यार्थियों की उन्नति का प्रश्न होता है यदि कोई विद्यार्थी अवनति की ओर चला जाता है तो स्कूल खोलने वाले पर पाप फैलाने का दोष नहीं लगाया जा सकता।

प्रश्न—अगर कोई ऐसा परमात्मा होता जैसा कि तुम कहते हो तो संसार में कोई पाप दृष्टि गोचर न होता।

उत्तर—यह प्रश्न तो उन मनुष्यों पर लागू हो सकता है जो केवल एक परमात्मा से ही संसार की उत्पत्ति मानते हैं। जो लोग जीव को भी अनादि मानते हैं उन पर

यह प्रश्न नहीं हो सकता। जीवकर्म करने में स्वतन्त्र है अतः वह पाप और पुण्य दोनों मार्गों में प्रवृत हो सकता है। इस बात पर नास्तिक महोदय यह कहते हैं कि क्या परमात्मा में यह शक्ति नहीं है कि वह संसार से पाप को मिटा दे। हम कहेंगे कि ऐसा होना सम्भव नहीं। इसके कई कारण हैं।

(क) प्रथम कारण तो यह है कि जीव चेतन है चेतन का लक्षण स्वतन्त्रता है और जो स्वतन्त्र होता है वह पाप और पुण्य दोनों कर सकता है चेतन की स्वाभाविक सत्ता(स्वतन्त्रता)उस से पृथक् नहीं की जा सकती। क्योंकि चेतनता का अर्थ ही स्वतन्त्रता है यदि परमात्मा इस स्वतन्त्रता को छीन ले तो फिर जीव एक प्रकार का जड़ पदार्थ हो जायगा। जब जीव ही जड़ रूप होगया तो फिर वह अपनी उन्नति भी नहीं कर सकता जैसे अग्नि से तेज पृथिवी से गन्ध और जल से रस पृथक् कर लिया जाय तो इन वस्तुओं की कोई सत्ता नहीं रहती इसी प्रकार आत्मा से स्वतन्त्रता पृथक् कर लेने से आत्मा की सत्ता ही नष्ट हो जाती है। इसके साथ यह देख लेना भी आवश्यक है कि कोई स्वाभाविक गुण गुणी से पृथक् किया ही नहीं जा सकता।

(ख) दूसरा कारण यह है उन्नति तो विकास का विषय है यह तो धीरे धीरे प्राप्त होती है उन्नति ऐसी वस्तु नहीं जो एक साथ ही प्रदान की जा सके। क्या आपके विचार में बिना योग्यता प्राप्त किए किसी को कोई वस्तु प्रदान कर देनी न्याय है ? यदि ऐसा है तो हम कहेंगे कि एक गडरिये को चीफ इंजिनीयर बना दिया जाय तो क्या वह उस काम को सम्पादन कर लेगा ? परमात्मा की दया देखिये कि उसने मनुष्य की उन्नति के लिये अनेक प्रकार के साधन बना दिये और पाप और पुण्य को परखने के लिये आत्मा को ही कसौटी बना दिया।

आत्मनः प्रति कूलानि परेषां न समाचरेत्।

प्रत्येक मनुष्य इस कसौटी से पाप और पुण्य को परख सकता है यदि इस पर भी मनुष्य गिरता ही जाय तो फिर उसके लिये क्या किया जा सकता है परन्तु भगवान् की दया यहां तक ही समाप्त नहीं हो जाती वह गिरे हुओं को भी बार बार उठने का अवसर प्रदान करता है। साथ साथ कर्म फल देकर उस को शिक्षा भी देता जाता है और उसे ऊंचा बनने का अवसर भी देता है। अतः पाप जीवात्मा

की अपनी अल्पज्ञता का कारण है ईश्वर का इस से सम्बन्ध नहीं।

यदि यही प्रश्न हम आपसे करें कि पाप का फैलाना आपके परमाणुवाद का स्वभाविक कारण है या किसी निमित से संसार में पाप होता है या आपके सिद्धान्त में सृष्टि की प्रगति ही पाप पर निर्भर है आप तो एक ही वस्तु से संसार की उत्पत्ति मानते हैं अतः आपके लिये सिवाय इस बात के मानने के और कोई उत्तर हो नहीं सकता कि आप इस सृष्टि की आधार शिला पाप पर ही निर्भर मानें। हां, इस सम्बन्ध में एक प्रश्न और किया जासकता है कि क्या परमात्मा सुधार नहीं कर सकता? इस पर हम कहेंगे कि सुधार तो परमात्मा की दया और सहायता से ही होसकता है किन्तु विद्रोही मनुष्य उस सहायता का अधिकारी नहीं होता, जो मनुष्य सृष्टि नियम के प्रतिकूल कार्य्य करता है और पुनः नियम के बनाने वाले नियामक से सहायता चाहता है तो यह सर्वदा मिथ्यावाद ही होसकता है। जैसे एक मनुष्य यव को बोकर गेहूँ की आशा रखता है वह सृष्टि विरुद्ध है अतः यह प्रश्न भी व्यर्थ है।

प्रश्न—संसार में देखा जाता है कि पुण्यात्मा पुरुष दुखी तथा

पापात्मा पुरुष सुखी दृष्टि गोचर होते हैं ?

उत्तर–हम उत्तर देने के पूर्व आपसे प्रश्न करेंगे कि आपका इस विषय में क्या सिद्धान्त है क्या आपका मन्तव्य यही है कि पाप करने वाला सुखी होता है, यदि ऐसा है तो सृष्टि में आपका लक्ष्य केवल पाप ही रह जायगा ऐसा मानने से सारा संसार केवल पापमय ही होजायगा।

हमारी ओर से तो उत्तर स्पष्ट है कि मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार आवागमन के चक्कर में जाता है और कई जन्म जन्मान्तरों के कर्मफल उसे भोगने पड़ते हैं। प्रारब्ध, सञ्चित और क्रीयमान तीनों प्रकार के कर्मों से मनुष्य सुखी और दुखी होता है। अतः यह प्रश्न कि पापी सुखो और धर्मी दुखी प्रतीत होते हैं वैदिक धर्म पर (यह प्रश्न) नहीं आसकता

प्रश्न–आपका परमात्मा भी बड़ा कौतुकदर्शी मालूम पड़ता है जैसे बटेर और मुर्गा लड़ाने वाले उनको लड़ाकर प्रसन्न होते हैं वैसे ही आपका परमात्मा भी खूब प्रसन्न होता है इसी कारण संसार में इस प्रकार संग्राम मचा हुआ है।

उत्तर–हम प्रश्न कर्ता महोदय से पूछेंगे कि आपके कान में

भी कभी परमात्मा ने आकर कहा कि लड़ो ! या जो जातियां परमात्मा को मानती ही नहीं उनकी लड़ाइयां किस परमात्मा ने कराईं। आपका यह प्रश्न भी केवल भ्रान्ति ही है। हम आपसे पूछते हैं कि आपके पास इस बात के लिये क्या प्रमाण है ? परमात्मा लड़ा कर प्रसन्न होता है। आप तो परमात्मा को नहीं मानते फिर आप बतावें आपके मतानुसार संग्राम कौन कराता है, हमतो इसका उत्तर पहले दे चुके हैं कि जब कोई व्यक्ति अथवा जाति स्वार्थान्ध हो जाती है तो वही संसार को संग्राम मय कर देती है। इतिहास के अन्दर जितने भी संग्राम हुए हैं सब इसके साक्षी हैं. अन्यथा इटली, जापान और रूस से जाकर पूछलें कि वह परमात्मा को न मानते हुए भी क्यों लड़ रहे हैं। यह प्रश्न तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कोई न्यायालय में बैठे हुए न्यायधीश को देख कर गालियां निकालने लग जावे कि संसार को तुम्हीं लड़ाते हो और तुम्हीं जेलों को भरते हो और तुम्हीं मनुष्यों की हत्या करते हो।

प्रश्न—ईश्वर को मानना मानवोन्नति में बाधक है और उसके मानने से बड़े २ भयानक परिणाम हो रहे हैं।

उत्तर—ईश्वर को मानना मानवोन्नति के लिये बाधक नहीं

और न कोई ईश्वर को मानने से भयानक परिणाम होता है, संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन मनुष्यों ने भगवान् के साथ अपने आपको मिला लिया है और उसकी आज्ञानुसार अपने जीवन को बनाया है वह किस प्रकार उन्नति के शिखर पर चढ़ गये हैं यह प्रत्यक्ष है। भयानक परिणाम तो ईश्वर को न मानने से होते हैं जब कोई मनुष्य ईश्वर को मानता है तब वह पाप करता हुआ उसके कर्मफल को देखकर अवश्य भयभीत होगा।

यदि कोई मनुष्य ईश्वर को मानना ही छोड़ दे तो कर्म फल का भय न रहने से नहीं डरेगा यह प्रवृति सारे संसार को अवश्य पापी बना देगी।

प्रश्न—ईश्वर के विश्वास में मनुष्यों और पशुओं के साथ दुर्व्यवहार करने की आज्ञा है, मनुष्य और पशु बलिदान इसके साक्षी हैं।

उत्तर—प्रश्न कर्त्ता महोदय ने सुन सुना कर ही ऐसे ऊटपटांग प्रश्न करदिये हैं जिसमें कुछ सार नहीं, कहते हैं कि एक ब्राह्मण बड़ी अच्छी गाय लिये जारहा था। कुछ लुटेरों ने सोचा कि यह गाय इससे ले लेनी चाहिये वह चारों के चारों कुछ २ दूरी पर ब्राह्मण देवता के रास्ते में खड़े होगये। सबसे प्रथम ठग ने

ब्राह्मण देवता से कहा कि महाराज यह गधा कहां से लाये और ब्राह्मण होकर गधा लिये जाते हो क्या बात है, ब्राह्मण बोला कि नहीं यह गाय है, ठग ने कहा आपकी इच्छा, मुझे तो गधा प्रतीत होता है, इसी प्रकार चारों ने ब्राह्मण से कहा, तब ब्राह्मण ने सोचा कि सभी लोग यही बात कहते हैं और मेरी बड़ी निन्दा होरही है अतः उसने इस निन्दा को देखते हुए गाय को छोड़ दिया और स्वयं स्नान करके अपने मार्ग पर होलिया। ठीक इसी प्रकार बलिदान का प्रश्न है। जब कुछ मनुष्यों की जिह्वा रसना ने व्याकुल किया तो उन्होंने अपने स्वार्थ के लिये इस पापमय प्रथा को प्रचलित करदिया। प्रश्न कर्त्ता महोदय ने ब्राह्मण से गौ छीनने वाले ठगों की बात भी प्रमाण मानकर व्यर्थ ही प्रश्न करके भ्रान्ति फैलाई। हम नास्तिक महोदय से नम्रता पूर्वक प्रार्थना करेंगे कि ईश्वर ऐसी आज्ञा कभी नहीं दे सकता और न कभी दी है, यह तो स्वार्थी मनुष्यों की अपनी कल्पना है, किन्तु हम एक प्रश्न आपसे भी करेंगे कि आपकी शक्ति और प्रकृति जिसने इतनी बड़ी भारी सृष्टि को रचदिया, एक कल्पित बात से प्रभावित होकर इस प्रकार अत्याचार देखती हुई चुप साधे

हुए बैठी रही और इसका कुछ प्रतिकार न कर सकी।

प्रश्न—यदि कोई ईश्वर है तो हम मेज़ पर एक घड़ी रख देते हैं उसको उठाकर वह हमारे हाथ पर रखदे यदि ऐसा न कर सके तो वह तीन साल के बच्चे से भी निर्बल है क्योंकि जब हम तीन साल के बच्चे को भी कहते हैं तो घड़ी उठाकर हमारे हाथ पर रख देता है।

उत्तर—इस प्रश्न से प्रश्न कर्त्ता की बुद्धि का पूर्ण परिचय मिलता है और बड़ो दूर की उसको सूझी है कहते हैं कि एक मूर्ख ईश्वर का बड़ा प्रेमो था। प्रातः उठकर यह प्रार्थना किया करता कि मेरे प्यारे ईश्वर मुझे तुम पर बड़ी दया आती है यदि तू मेरे पास आजाय वो तेरे कष्टों का कुछ यत्न करूं, क्योंकि तुझ बेचारे के हाथ पांव भी नहीं जिससे खा सके और चल फिर सके, आंखे भी नहीं कि कुछ देखसके, मुंह भी नहीं कि खा सके और अपने कष्ट को कहसके, मस्तिष्क भी नहीं कि सोच सके ओहो तेरे दिन कैसे कटते होंगे? ठीक इसी प्रकार के मनुष्य का ही यह आक्षेप है। प्रश्न कर्त्ता महोदय को इतना भी पता नहीं कि भौतिक पदार्थों के नियम अभौतिक पदार्थों पर लागू नहीं हो सकते। ईश्वर भौतिक नहीं

है अतः यह प्रश्न उस पर नहीं किया जासकता । कल को कोई यह भी कहेगा कि भगवान् मेरा चारा काट दें घर बनायें कूएं खोद दें इत्यादि। यह सब बातें मूर्ख मनुष्यों की हैं परन्तु हम नास्तिक महोदय से कहेंगे कि वह अपने माद्दा और शक्ति को कहें कि वही घड़ी उठाकर हमारे हाथ पर रखदें पानी भर के लायें । आप कहेंगे कि हम लादेते हैं किन्तु यहां पर प्रश्न आपका नहीं क्योंकि हमतो आपके अन्दर आत्मा मानते हैं जो यह सब काम शरीर से कराता है प्रकृति जड़ होने से कुछ नहीं कर सकती । आप अपने माद्दा और शक्ति से कहें जिसने आपको और सारे संसार को पैदा किया है वह इस घड़ी को उठाकर हमारे हाथ पर रखें, देखें आप इस परिक्षा में उतीर्ण होते हैं या नहीं आशा है कि आप प्रतिदिन अपनी प्रकृति और शक्ति से प्रार्थना करेंगे कि इस प्रश्नानुसार घड़ी उठाकर आपके हाथ पर रख जायें। अतः आपको पहले यह समझ लेना चाहिये कि भौतिक अभौतिक के नियम क्या हैं फिर इस प्रश्न का उत्तर स्वयमेव मिल जायगा ।

प्रश्न—आपका ईश्वर तो बड़ा ही हत्यारा और अत्याचारी प्रतीत होता है कि कहीं सृष्टि भूकम्पों से नष्ट हो रही

है कहीं महामारियों से मर रही है कहीं ओले और वर्षा फसलों को नाश कर रहे हैं और कहीं अनावृष्टि से सूख पड़ रहा है इत्यादि।

उत्तर–हम नास्तिक महोदय से पूछते हैं कि अभी तो आप यह कह रहे थे कि आपका ईश्वर कल्पित है उसका कोई अस्तित्व नहीं और अभी उस कल्पित ईश्वर के ऊपर इस प्रकार दोषारोपण कर दिया। उत्तर देने के पूर्व हम आपसे ही पूछते हैं कि आपकी प्रकृति युक्त शक्ति बड़ी आत्याचारिणी है कि वह संसार के ऊपर इस प्रकार भयानक आघात कर रही है। ज़रा इसका उत्तर सोचलें? अपना घर शीशे का बना कर दूसरों पर पत्थर मारना कौनसी बुद्धि मत्ता है

हम तो इस प्रश्न का उत्तर पहले ही दे चुके हैं और हमारा अटल सिद्धान्त है कि प्रत्येक मनुष्य को प्रारब्ध, सिञ्चित और क्रीयमाण कर्मों का फल मिलता है। यदि एक मनुष्य समुद्र के किनारे रेत की आधार शिला पर मकान बनावे और समुद्र की लहर से वह जाने पर ईश्वर को दूषित करना प्रारंभ करदे कि वह बड़ा अत्याचारी है उसने मेरा मकान बहादिया। तो फिर ऐसे मूर्ख के लिये उत्तर

स्वयं ही समझ लें। हम प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं कि गन्दे मकानों में भेड़, खटमल, बिच्छू आदि सहस्रों प्रकार के विषैले जन्तु पैदा हो जाते हैं किन्तु जिनकी कोठियां बड़ी स्वच्छ होती हैं, उनमें ऐसे विषैले जन्तु पैदा नहीं होते। इस बात पर ध्यान करने से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि हमारी अस्वच्छता ही विषैले जन्तु उत्पन्न करने का कारण है। यह भगवान् की अपार दया है कि उसका सृष्टि नियम इस विष के प्रभाव का नष्ट करने के लिये सांप बिच्छु आदि विषैले जन्तुओं को बना देता है। यदि ऐसा न बनावे तो उस विष के प्रभाव से संसार के प्राणी नष्ट हो जावें इससे सिद्ध हुआ कि संसार की हानि जिस प्रकार वह विष करता है विषैले जन्तु नहीं करते। यही नियम दूसरे हिंसक पशुओं का है। जंगलों की रक्षा के लिये इस प्रकार के पशु अत्यन्त लाभदायक होते हैं। एक शेर से जंगल की रक्षा जितनी होती है सौ आदमी मिल कर उतनी नहीं कर सकते। कई राजाओं को अपने जंगलों की रक्षा के लिये शेर बाहर से लाकर छोड़ने पड़ते हैं। इन सब बातों के साथ साथ कर्म फल का अटल सिद्धान्त आपके प्रश्न के उत्तर के लिये पर्याप्त है।

प्रश्न– आपका ईश्वर तो साधारण कारीगर के सदृश्य भी बुद्धि नहीं रखता यदि कुछ भी बुद्धि होती तो इस प्रकार की बेढंगी भूमि न बनाता, कहीं हिमालय जैसे ऊंचे २ बेढब पहाड़ कहीं मीलों गहरे गड्ढे कहीं रेत के टीले और कहीं ऊंची और नीची भूमि बनाई। भूमि से तीन गुणा अधिक जल का भाग बना दिया। छोटी सी तरबूज की बेल के साथ दस दस सेर पक्के का तरबूज, और वट जैसे विशाल वृक्ष पर छः छः माशे का फल कैसा अनमेल और बे जोड़ बनादिया, जो आपके ईश्वर की कारीगरी का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

उत्तर–उत्तर देने से पूर्व यही प्रश्न हम मादा और शक्ति के पुजारियों से करेंगे कि आपके विचार में तो यही दोनों वस्तुएं संसार बनाने का कारण हैं इसी प्रकार दूसरे अनीश्वरवादियों से भी, वह जिसको भी संसार का कारण समझते हों कि उनके मतानुसार ऐसी ऊंची नीची और बेढंगी भूमि किस तरह बनगई। क्या यही प्रश्न उन पर भी वैसा ही लागू नहीं होता? जैसा कि वह ईश्वरवादियों पर कर रहे हैं। परन्तु आओ! हम इसका उत्तर देते हैं, जरा एक पहाड़ के किनारे पर हमारे साथ खड़े हो जावें और नीचे की तरफ दृष्टि ले जावें और उन

स्वाभाविक और सुन्दर प्राकृतिक हरियाली की उतराई (नशेब) को तरफ देखें कि किस प्रकार निर्मल और स्वच्छ नदियों का बहता हुआ जल भिन्न २ प्रकार के प्रफुल्ल सुमन अपनी मन्द मन्द सुगन्धि से दर्शक के मनको शान्त और मस्त बना रहे हैं। इसके साथ गहरी दृष्टि से देखें, पर्वतों पर होने वाली अथाह वर्षा का जल उन्हीं उतराइयों से होकर समुद्र की ओर जारहा है। और उन बड़े २ गड्ढों को जल से परिपूर्ण कर रहा है। जो ग्रीष्म ऋतु में मनुष्य और पशु पक्षियों के जीवन के आधार बनाता है। यदि आपके कथनानुसार भूमि समतल होती तो एक ही वर्षा सृष्टि वासियों को डुबो देती। प्रकृति का स्वभाविक दृश्य प्राकृतिक नियमों से ही देखना चाहिये। यह बड़े २ ऊंचे पहाड़ जहां भिन्न २ रत्नों धातुओं को उत्पन्न करते हैं, वहां अनेक प्रकार की वनस्पतियां और शिलाजीत जैसी बलवर्धक औषधियां हमारे लिये उत्पन्न करते हैं। जहां हिमालय हमें विदेशियों के आक्रमण से सुरक्षित रखता है वहां मानसून हवाओं को रोक कर सारे भारतवर्ष को वर्षा से सींचकर उद्भिज बनाता है। यदि हिमालय नहीं होता तो यह देश वर्षा से सर्वथा रिक्त हो जाता

और आपकी समतल भूमि सूखे श्वास लेती २ अपने आश्रित प्राणियों को मृत्यु की गोद में सुला देती। उस विचित्र शक्तिमान् की शक्ति पर आक्षेप करने वालो ! ज़रा देखो पृथिवी के गर्भ में किस बुद्धिमत्ता के साथ जल के कोष भर रखे हैं कि जहां से जरा खोदा अपनी प्राण रक्षा के लिये जल निकाल लिया, उन बड़े २ पहाड़ों से स्थान स्थान पर किस सुन्दरता के साथ जल की धाराएं बह रही हैं जो आपका जीवन स्थिर रखती हैं। यह पृथिवी का ऊंचा नीचा होना प्राणियों के लिये विशेष लाभप्रद है।

जल का पृथिवी भाग से अधिक होना इस बात का स्पष्ट उदाहरण है कि यदि यह जल कम होता तो सूर्य्य वहां से जल को खींच कर सारी पृथिवी को सींच न सकता। भगवान् ने ठीक उतना ही जल का भाग रखा है जिससे सृष्टि में वर्षा का कार्य्य समुचित चलता रहे, हम आक्षेप करने वाले का ध्यान जरा उसके शरीर की तरफ ही दिलाते हैं कि किस अलौकिक बुद्धिमत्ता से यह शरीर रचना की गई है। शरीर के अन्दर अनेक प्रकार की सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाड़ियें किस प्रकार मनुष्य जीवन के लिये उपयुक्त हो रहा हैं। मनुष्य का मस्तिष्क किस विचित्रता के साथ

निर्माण किया गया है जिसे देख कर बुद्धि विस्मित हो जाती है जो शक्ति इतनी अलौकिक रचना रच सकती है उसके सामने पृथिवी क्या वस्तु है ? यदि आपकी आंखें पिछली तरफ लगा देता कान को घुटनों पर और मुंह एड़ी के पास बना देता तो किस प्रकार कष्ट होता परन्तु ऐसा नहीं है। इस रचना को देख कर भी जो मनुष्य भूमि को बेडौल समझ रहे हैं और उस पर आक्षेप कर रहे हैं वह सर्वथा मार्ग भ्रष्ट हैं।

जरा सी बेल के साथ तरबूज जैसा बड़ा फल और बटवृक्ष के छोटे से फल के सम्बन्ध में एक घटना उद्धृत करते हैं जो इसके लिये पर्याप्त उत्तर है।

एक देहाती कहीं जा रहा था उसने तरबूज की बेल को देखा और उससे आगे चल कर जामुन के वृक्ष को देखा मन में सोचने लगा कि इतने बड़े वृक्ष में छोटे २ फल और ज़रा सी बेल में इतने बड़े फल यह बहुत ही अनमेल व्यवस्था है। इस व्यवस्था को बनाने वाला कोई बुद्धिमान् नहीं इतने में मध्याह्न होगया और वह उस वृक्ष की शीतल छाया में सो गया। सोने की अवस्था में उसके सिर पर एक जामुन का कच्चा फल गिरा, जिससे वह चौंक पड़ा और

कहने लगा कि भगवान् की विचित्र कारीगरी धन्य है यदि इस वृक्ष में तरबूज की तरह फल लगा देता तो मेरी समाप्ति तो आज ही होजाती ।

जो लोग इस प्रकार का आक्षेप करते हैं उन्होंने कभी प्राकृतिक नियमों का गहरी दृष्टि से अवलोकन नहीं किया ।

प्रश्न—ईश्वर की सर्वव्यापकता भी विचित्र गोरखधंदा है क्योंकि कोई स्थान ऐसा नहीं जहां पर प्रकृति के सूक्ष्म अणु विद्यमान् न हों। यदि इन अणुओं के अतिरिक्त और कोई ईश्वर विद्यमान् होता तो या तो अणुओं के साथ उसकी टक्कर होजाती या सम्मिश्रण हो जाता ।

उत्तर—यह दोनों बातें ईश्वर पर नहीं घट सकतीं। टक्कर तो दो स्थूल पदार्थों में होती है। परमात्मा स्थूल नहीं है इसलिये कोई वस्तु उसके साथ नहीं टकरा सकती सम्मिश्रण उन वस्तुओं का होता है जिनकी सत्ता सम हो जैसे एक जल के बिन्दु में दूसरा बिन्दु डालें तो सम्मिश्रण हो जायगा। यदि पानी में लकड़ी डालें तो उसका सम्मिश्रण नहीं होता। यह नियम हमारे सामने काम करता हुआ दिखाई देता है कि

हर सूक्ष्म वस्तु स्थूल के अन्दर व्यापक रहती है जैसे पृथिवी के अन्दर अग्नि और जल, शेष सब तत्वों के अन्दर बिजली और इन सबों के अन्दर आकाश। आत्मा पार्थिक वस्तुओं से अत्यन्त सूक्ष्म है। वह सब शरीरों में रहता है। न तो उसका सम्मिश्रण होता है और न टक्कर होती है। इसी प्रकार इन सब वस्तुओं से अत्यन्त सूक्ष्म है, उसके सर्वव्यापक होने में कोई वस्तु बाधक हो नहीं सकती।

प्रश्न—यदि ईश्वर सर्वव्यापक है तो संसार में गन्दे स्थानों पर भी उसका होना आवश्यक है। बड़े २ शहरों में तो गन्दगियों के ढेर लगे रहते हैं ऐसी अवस्था में उसका नाक में दम आ जाता होगा।

उत्तर—यह प्रश्न भी प्राकृतिक संसार से सम्बन्ध रखता है। निरवयव और निराकार वस्तुओं पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। जैसे मनुष्य के अन्दर आत्मा रहती है और आत्म शक्ति से यह प्राकृतिक इन्द्रियां सब पदार्थों का अनुभव करती हैं। मनुष्य के आमाशय में प्रत्येक समय मल विद्यमान् होता है, परन्तु अन्दर से आत्मा को कोई दुर्गन्ध नहीं आती। जिस समय मल शरीर से बाहर होता है घ्राणेन्द्रिय उसकी दुर्गन्ध को अनुभव करती है अतः ऐसे प्रश्नों के लिये

एक नियम समझ लेना ही पर्याप्त है कि दुर्गन्ध सुगन्ध, विष, शीतोष्ण ऐसी सब बातों का प्रभाव प्राकृतिक वस्तुओं पर होता है आत्मिक पदार्थों पर नहीं।

इसी प्रकार के और भी कई प्रश्न अनीश्वर वादियों के होते रहते हैं। जिनका ईश्वर के निज स्वरूप के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है केवल सुनने सुनाने पर या ऐसी बातों पर निर्भर हैं जो स्वयं असिद्ध और सत्य से कोसों दूर हैं। इनके सबके सब आक्षेप निम्न लिखित गाथा के अनुसार हैं कहते हैं कि एक देहाती खुरपा लेकर घास खोदने को जंगल में गया और खोदने से पूर्व जैसा कि देहातियों का नियम होता है हाथ में थूक लगाकर खुरपे को घुमाने लगा, इस अवस्था में खुरपा उसके नाक पर लगा और नाक कट गया। इसी प्रकार एक दूसरा मनुष्य खुरपे को भूमि पर रख कर पानी पीने गया, लौटने पर उसका पांव खुरपे पर आने से कट गया, ऐसे ही आपस में दो मनुष्यों का झगड़ा होगया एक ने दूसरे पर खुरपे से वार किया और वे दोनों ही घायल होगये। इन उदाहरणों को लेकर कुछ लोगों ने शोर मचाना प्रारम्भ कर दिया कि यह खुरपा तो बड़ा अत्याचारी

है सब लोगों को घायल कर देता है अतः इसको पास न रखना चाहिये, ठीक यही व्यवस्था नास्तिकों की है उन्होंने स्वार्थी मनुष्यों की कल्पनाओं को लेकर जिनकी सत्यता का कोई प्रमाण नहीं है। आक्षेप करके संसार में भ्रान्ति फैलादी है इस भ्रान्ति से बुद्धिमान् मनुष्यों को बचना चाहिये। इनके अपने सिद्धान्त क्या हैं और मतमतान्तरों के ईश्वर के सम्बन्ध में कल्पित विश्वास पर हम इस पुस्तक के दूसरे भाग में लिखेंगे ताकि सर्वसाधारण को पता लग जाय कि मतमतान्तरों की कल्पना सर्वथा निराधार है और जिन लोगों ने उनके आधार पर प्रश्न किये हैं उन्होंने केवल संसार को धोका दिया है उसमें कुछ सार नहीं।

आप्त पुरुषों के वचनों से ईश्वर की सिद्धि ।

संसार में अनेकों ऐसे महापुरुष होचुके हैं जिन्हों ने स्वतन्त्रता पूर्वक विचार शक्ति से काम लिया है और विचार करने के अनन्तर मनन करके ईश्वर विषय में अपने अपने विचार उद्गार प्रकाशित किये हैं। ऐसे विद्वानों में तत्ववेत्ता, वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा प्रकृतिव्याख्याता, कविजन और साधु सन्त महात्माओं का स्थान बहुत ऊंचा है। हमारी इच्छा है कि परिशिष्ट स्वरूप कुछ सम्मतियें भी इस निबन्ध में निबद्ध कर दी जायें जिससे जिज्ञासु-जनों को यह पता लग सके कि मनुष्य समाज के उत्कृष्ट विचारकों ने ईश्वर के विषय में कैसी २ निर्भ्रान्त धारणायें की हैं और ईश्वर की सत्ता को क्यों स्वीकार किया है।

महर्षि श्वेताश्वतर

स्वभावमेके कवयो वदन्ति,
कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः।
देवस्यैष महिमा तु लोके,
येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥

कई एक विद्वान यह कहते हैं कि जगत् अपने आप चल रहा है इसको गति देने वाला कोई नहीं है। कई लोग ऐसा न मान कर यह कहते हैं कि 'काल' ही एक ऐसी वस्तु है जो जगत् में परिवर्तन का कारण है, परन्तु स्वभाववादी की अपेक्षा कालवादी अधिक अज्ञान में हैं। वास्तव में बात तो यह है कि परमात्मदेव की अलौकिक शक्ति ही है जिसके द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नियमपूर्वक भ्रमण कर रहा है।

न तस्य कार्यं करणं चाविद्यते,
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते,
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

उस परमात्मदेव का न कोई कार्य्य है ना ही कोई कारण है क्योंकि वह किसी भी वस्तु का उपादान नहीं है और न ही उस का कोई उपादान है। उसके समान भी कोई नहीं है, जब समान ही नहीं है तो उससे अधिक कैसे हो सकता है। उसमें अनेक प्रकार की शक्तियें हैं उसमें ज्ञान, बल और क्रिया स्वाभाविक हैं।

इसमें यह बतलाया गया है कि प्रकृति संसार का उपादान है, जगत् में गति स्वाभाविक नहीं है, जीव परस्पर समान गुण वाले हैं, ईश्वर जीवों और जगत् से सर्वथा उत्कृष्ट है, ईश्वर सर्वज्ञ सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् है।

महर्षि वरुण

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तत् ब्रह्म तद्विजिज्ञासस्व॥

तैत्तिरीयोपनिषद्॥

जिसके अलौकिक सामर्थ्य से जगत् की उत्पत्ति होती है तथा जीवों को कर्म फल प्राप्त करने के लिये जीवन मिलता है और अन्त में प्रलयावस्था आती है वह महान् शक्तिशाली ब्रह्म है उसको अच्छी प्रकार से जानने का यत्न करो।

क एवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्।

कौन गति कर सकता और कौन प्राणधारण

कर सकता यदि आकाशवत् व्यापक परमात्मा आनन्द स्वरूप न होता ?

वैवस्वत यमाचार्य

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥

कठोपनिषद् ॥

एक ईश्वर ही है जिसने सब ब्रह्माण्ड को वश में कर रखा है तथा सब प्राणियों के अन्दर व्यापक होकर उन को अनेक प्रकार की योनियों में घुमा रहा है। जो बुद्धिमान् उस परमेश्वर को अपने हृदय में स्थित हुआ देखते हैं उनको ही सच्चा सुख प्राप्त होता है दूसरों को नहीं।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतोभाति कुतोऽयमग्निः । तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

वहां (ईश्वर तक) न तो सूर्य्य का प्रकाश पहुंचता है और ना ही चन्द्रमा तथा तारागण का। ना यह बिजुलि

ही उसको दिखा सकती है। इस तुच्छ पार्थिव अग्नि में तो भला क्या शक्ति है। उस परमेश्वर के प्रकाश से प्रकाशित होकर ही यह सूर्य्य आदि प्रकाश करते हैं इन में से किसी में भी अपना प्रकाश नहीं है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिता। अथ मर्त्योऽमृतो भवात्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥

जब मनुष्य के हृदय में रहने वाली सभी कामनायें शान्त हो जाती हैं तो वह जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्त हो कर ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त होता है।

महर्षि अंगिरा

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हिशुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥

मुण्डकोपनिषद्॥

इस परमेश्वर को सत्यभाषण, तपश्चरण, यथार्थज्ञान और निरन्तर ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त किया जा सकता है।

सदाचारी जितेन्द्रिय पुरुष ही अपने हृदय में ज्योतिः स्वरूप सच्चिदानन्द परमेश्वर का दर्शन करते हैं।

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा। ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥

वह परमेश्वर न आंखों से देखा जा सकता है ना ही किसी अन्य इन्द्रिय से जाना जा सकता है। ना ही किसी बाहिरी तप-कर्म के ढोंग से ही प्राप्त किया जा सकता है। जब यथार्थ ज्ञान के परिपक्व होने से बुद्धि निर्मल हो जाती है तो उसके अनन्तर ही ध्यान योग के द्वारा ईश्वर के शुद्ध स्वरूप का दर्शन होता है।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्य मीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः॥

पुरुष के अपने शरीर के अन्दर ही आत्मा के पास ही परमात्मा भी विराजमान है परन्तु जीवात्मा इन्द्रियों का दास होकर परमात्मा को नहीं देखता और भोगों में लिप्त होकर दुःखी और शोक ग्रस्त होता रहता है। जब कभी कल्याणकारी परमेश्वर को अपने साथ जुड़ा हुआ

देखता है और उसकी महिमा का अवलोकन करता है तो उसके दर्शन मात्र से जीव का शोक मोह दूर हो जाता है।

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः।

वह परमात्मा अमूर्त निराकार है और दिव्य शक्तियों से युक्त है। वह संसार ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर विद्यमान् है तथा उत्पत्ति रहित अजन्मा है। उसका कोई शरीर नहीं है ना ही मन है सर्व प्रकार के दोषों से रहित है क्योंकि वह प्रकृति से परे जीवात्मा से भी परे है।

जीवात्मा से परे होने का तात्पर्य यह है कि जैसे जीव शरीर धारण करके जन्म मृत्यु के चक्र में आता है वैसे ईश्वर जन्म मरण में नहीं आता। दूसरे शब्दों में यूं कह सकते हैं कि जीवों को जन्म जन्मान्तर में भ्रमण करने के लिये ऐसे चेतन की आवश्यकता है जो स्वयं शरीर धारी न हो। इसी लिये ईश्वर का निराकार होना आवश्यक है।

ऋषिवर ब्रह्मानन्द

असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत्।
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः॥

तैत्तिरीयोपनिषद्।

यदि कोई व्यक्ति ब्रह्म की सत्ता से इन्कार करता है तो वह व्यक्ति भी सत्ता हीन समझना चाहिये। परन्तु यदि वह अपनी सत्ता को मानता है तो उसके ऐसा मानने से ही ब्रह्म की सत्ता सिद्ध हो जाती है क्योंकि ब्रह्म के होने से ही वह शरीर धारी बन कर संसार में आया है अपने आप नहीं।

कोई भी नास्तिक यह नहीं सिद्ध कर सकता कि उसने अपने आप शरीर धारण किया है। माता पिता भी शरीर बनाने वाले नहीं कहे जा सकते क्योंकि उनको तो यह भी पता नहीं कि पेट के अन्दर क्या है और किस प्रकार बन रहा है अतः कोई सर्वज्ञ ईश्वर होना चाहिये जिसकी निगरानी Supervision में शरीर की अद्भुत कला कौशल का प्रदर्शन हो सके।

भीषाऽस्माद्वातः पवते, भीषोदेति सूर्यः।
भीषा स्मादग्निश्चेन्द्रश्च, मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

इसी परमात्मा के भय से भयभीत होकर वायु इधर उधर दोड़ता है। सूर्य्य भी इसी के भय से नियम बद्ध होकर ठीक समय पर उदय होता है एक मिनट की देरी नहीं कर सकता। अग्नि और बिजली तथा बादल भी इसी

परमेश्वर के भय से अपना २ कार्य्य यथा समय किया करते हैं। अधिक क्या मृत्यु भी परमेश्वर की आज्ञा से डर के मारे दौड़ा फिरता है।

ब्रह्मर्षि पिप्पलाद

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते सयोहवै तदच्छायमशरीर।
मलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य॥

प्रश्नोपनिषद्।

जो परमात्मा को अच्छाय, आकार रहित, शरीर रहित, रंग-रूप रहित, शुद्ध और अविनाशी जान लेता है। वही परमात्मा को पा सकता है।

तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्।
यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति॥

उस परमेश्वर को 'ओंकार' का अनुष्ठान करने से ही विद्वान् पुरुष प्राप्त कर सकता है और यह कह सकता है कि सर्वप्रकार के दोषों से रहित, अजर, अमर और आनन्द स्वरूप कोई विलक्षण चेतन तत्त्व अवश्य है।

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिता
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मावो मृत्युः परिव्यथा ।

जैसे रथ की नाभि में सब अरे स्थित होते हैं वैसे ही सब ब्रह्माण्ड जिसमें नियमबद्ध होकर प्रतिष्ठित हैं उस जानने योग्य व्यापक परमेश्वर को अवश्य प्राप्त करना चाहिये जिससे तुमको मृत्यु की भयानक चक्की में बार २ पिसना ना पड़े ।

महर्षि गोतम

ईश्वरः कारणं पुरुष कर्माफल्य दर्शनात् ।

न्याय दर्शन ।

जीवों के कर्म जड़ होने से अपने आप किसी को फल नहीं दे सकते और जीव स्वयं पाप कर्मों का फल भोगना नहीं चाहते, पुण्य कर्मों का फल चाहते हैं परन्तु उनमें सामर्थ्य नहीं कि अपने आप प्राप्त करलें । अतः जीवों को सुख दुःख का कर्मफल भुगवाने के लिये कोई चेतन सृष्टि का निमित्त कारण अवश्य है, वह ईश्वर ही है । यदि ईश्वर न होता तो जीवों को कर्मफल भी न मिलता परन्तु मिलता है अतः ईश्वर है ।

महर्षि कपिल

स हि सर्ववित् सर्वकर्ता ।
ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ।

सांख्य दर्शन ॥

विचार करने से ऐसे ईश्वर की सिद्धि निश्चित है जो सर्वज्ञ और सर्वकर्ता है। सृष्टि को देखने से यह निश्चय होता है कि इस ब्रह्माण्ड का रचने वाला कोई सर्वज्ञ सर्व-शक्तिमान् चेतन अवश्य है उसीको ईश्वर कहना ठीक है।

महर्षि याज्ञवल्क्य

एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्या-चन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्ता अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संव-त्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्ति। एतस्य वा अक्षर-

स्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्पन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्य प्रतीच्यो अन्य यां यांचादिशमनु ।

बृहदारण्यकोपनिषद् ।

गार्गीदेवी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि इस अविनाशी परमात्मा के प्रबल शासन में सूर्य्य चन्द्र और पृथिवी तथा तारागण अपनी २ मर्यादा में नियमबद्ध होकर भ्रमण कर रहे हैं। हे गार्गी ! इसी अविनाशी परमात्मा के सुदृढ़ शासन में क्षण, पहर, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु और वर्ष आदि नियम पूर्वक आते जाते हैं। हे गार्गी ! इस अविनाशी परमात्मा के सुदृढ़ शासन में ही कुछ नदियें सफेद बर्फ़ीले पर्वतों से निकल कर पूर्व दिशा को और कुछ पश्चिम को बहती हैं कोई उत्तर को तथा कोई दक्षिण को भी बहती हैं।

एष सर्वेश्वरः एष भूताधिपतिरेष भूतपाल एष सेतुर्विधरण एषां लोकानामसम्भेदाय ॥

यह परमेश्वर ही सब का शासक है। यह ही जड़ जंगम का अधिपति है। यह ही सब प्राणियों का पालन पोषण करता है। यह ही परमेश्वर है जो इन लोक लोकान्तरों को टकरा कर नष्ट होने से बचाने के लिये कठोर नियमों द्वारा रक्षण कर रहा है।

माण्डूक्य ऋषि

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्यामी ।
एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥

माण्डूक्योपनिषद् ।

यह परमात्मा ही सबका राजा है । यह ही सर्वज्ञ है और अन्तर्यामी है । यह परमात्मा ही सब चराचर सृष्टि की उत्पत्ति तथा लय का मुख्य कारण है ।

महर्षि व्यास

शास्त्र योनित्वात् ।

वेदान्त दर्शन ।

भाषा और धर्म ज्ञान का आदि स्रोत वेद है । उस वेद को पढ़ने से प्रतीत होता है कि आदि सृष्टि में उत्पन्न हुए निर्बोध मनुष्यों को ज्ञान देकर जीवन का व्यवहार सिखाने वाला अवश्य कोई सर्वज्ञ चेतन था । अतः ईश्वर के होने में वेद प्रमाण है क्योंकि वेद का प्रकाश कर सकना ईश्वर के बिना किसी भी मनुष्य की शक्ति में नहीं है ।

शांकर भाष्य ।

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति ।

जो लोग यह कहते हैं कि सृष्टि में अनेक प्रकार की विषमता और निर्दयता के काम देखने में आते हैं इसलिये सृष्टि का कर्ता दयालु और न्यायकारी नहीं है, उनका ऐसा कहना भारी भ्रान्ति है क्योंकि ईश्वर ने अपनी इच्छा-पूर्ति के लिये सृष्टि नहीं रची, जो उसको निर्दयी या अन्यायी कहा जावे। ईश्वर ने तो जीवों के शुभाशुभ कर्मों का फल देने के लिये जगत् की रचना की है अतः कर्मों के कारण जगत् में सुख-दुःख की विषमता है ईश्वर को स्वेच्छा चारिता के कारण नहीं। जो भी विचार शील तटस्थ होकर सोचेगा उसको ऐसा ही मानना पड़ेगा।

महर्षि पतञ्जलि

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः तत्र निरतिशयं सार्वज्ञय बीजम् ॥

योग दर्शन।

सर्व प्रकार के क्लेशों, कर्मों के फलों तथा राग द्वेष से सर्वथा शून्य, कोई व्यापक चेतन अवश्य है। उस सर्वव्यापक चेतन को ही ईश्वर कहना चाहिये क्योंकि उस ईश्वर में सर्वोपरि सर्वज्ञता विद्यमान है।

समाधि सिद्धिरीश्वर प्राणिधानात् ।

उस ईश्वर के यथार्थ ज्ञान होने से जब श्रद्धा-भक्ति का उदय होता है तो समाधि की सिद्धि होती है ।

श्री पुष्पदन्ताचार्य

असित गिरिसमं स्यात् कज्जलं सिंधुपात्रे ।
सुरतरुवर शाखा लेखिनी पत्रमुर्वी ॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व कालं ।
तदपि तव गुणानामीश पारं न यामि ॥

महिम्न स्तोत्र ।

यदि हिमालय पर्वत के समान स्याही हो और उसे समुद्र की दवात में घोला जावे ओर कल्पवृक्ष अथवा संसार के वृक्ष मात्र की लेखनी से पृथिवी का कागज़ बना कर श्री शारदा जी सदा काल लिखती रहें तो भी हे परमेश्वर ! आपके गुणों का पार नहीं पाया जासकता ।

श्री जयन्तदेव

जगतां यदि नो कर्ता कुलालेन विना घट ।
चित्रकारं विना चित्रं स्वयमेव भवेत्तदा ॥

नयागमञ्जरी ॥

यदि संसार जैसी अद्भुत कलाकौशल को रचने वाला कोई नहीं है तो कुम्हार के बिना घड़ा और चित्रकार के बिना चित्र, अपने आप बन जाने चाहियें।

महाकवि कालीदास

जगद्योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः।
जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वरः॥

तू जगत् का कर्ता है परन्तु स्वयं अजन्मा है। तू जगत् का संहार करने वाला है परन्तु स्वयं अविनाशी है। तू जगत् की उत्पत्ति से भी पहिले विद्यमान् था परन्तु स्वयं अनादि है। तू सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर शासन करने वाला है परन्तु तुझ पर शासन करने वाला कोई नहीं है।

मान्यः समे स्थावर जगंमानां।
सर्गस्थिति प्रत्यवहार हेतुः॥

मैं उस देव को अपना माननीय मानता हूं जो इस चराचर जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय का मुख्य कारण है।

कविवर भारवि

तरसा भुवनानि यो बिभर्ति ध्वनाति ब्रह्म

यतः परं पवित्रम्। परितो दुरितानि यः पुनीते शिव तस्मै पवनात्मने नमः।

जो अपने अद्भुत सामर्थ्य से संसार के चौदह भुवनों का पालन पोषण करता है, जो सृष्टि के आदि में परमपवित्र 'वेद' का ज्ञान उपदेश करता है तथा जो भक्तजनों के पापविघ्नों को दूर करता है उस शुद्धबुद्ध स्वरूप कल्याणकारी भगवान् को नमस्कार है।

महाकवि माघ

उपप्लुतं पातुमदो मदोद्धतैस्त्वमेव विश्वम्भर विश्वमीशिषे। ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः॥

हे विश्वम्भर! आप ही हो जो बड़े बड़े अभिमानी क्रूरकर्मी लोगों द्वारा संसार को नष्टभ्रष्ट होने से बचाने के लिये अत्यन्त सावधानी से शासन कर रहे हो। ठीक ही है पृथिवी के घोर अन्धकार से प्रच्छन्न हुए महान् आकाश को प्रकाश से उज्वल करने में सूर्य्य के बिना कौन समर्थ है।

महात्मा भर्तृहरि

दिक्कालाद्य नवच्छिन्नानन्त चिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्यैक मानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥

जिसको दिशा और काल आदि से परिच्छिन्न नहीं किया जा सकता अर्थात् जो निराकार और निर्विकार है तथा अनन्त, चैतन्य स्वरूप, आनन्दघन, स्वतः सिद्ध, परमेश्वर है उस सर्वज्ञ शुद्ध स्वरूप को नमस्कार है ।

Descartes डेकार्टे

I find in myself an idea of God, as a substance Infinite, Eternal, Immutable, Independent, Omniscient, Omnipotent, by which my self and all other things have been created and produced

मुझे अपने हृदय के अन्तस्तल में ईश्वर विषयक एक दृढ़ विश्वास प्रतीत होता है कि ईश्वर एक अनादि, अनन्त, अविनाशी, स्वतन्त्र, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सत् पदार्थ है और उसी के कारण मेरा तथा अन्य सकल चराचर का संसार में जीवन स्थापित हुआ है ।

(दी हिस्ट्री आफ फिलोसफी)

युक्ति का स्वरूप यह हुआ कि यदि ईश्वर न होता तो मैं भी संसार में उत्पन्न न होता और ना ही जगत् के अन्य चराचर पदार्थों की रचना होती, परन्तु मैं भी हूं और जगत् के पदार्थ भी हैं अतः इन सब का रचने वाला कोई अवश्य होना चाहिये। वह रचयिता ही ईश्वर है और वह अनादि, अनन्त, निर्विकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् होना चाहिये।

स्मरण रहे कि यह 'डेकार्टे' महाशय यूरोप में Rationalism बुद्धिवाद के प्रधान अचार्य और महातार्किक विद्वान् माने जाते हैं।

प्रोफसर टिण्डल

The first marshalling of the atoms on which all subsequent action depends baffles a keener power than that of the microscope. Through pure excess of complexity, and long before observation can have any voice in the matter, the most highly trained intellect, the most refined and disciplined imagination retires in bewilderment from the contemplation of the problem.

Secret Doctrine Vol.-1

उन परमाणुओं की रचना जिन पर भविष्य कार्य्य का आधार है इतने सूक्ष्म हैं कि सूक्ष्म दर्शनयन्त्र से भी अनुभूत नहीं हो सकते। उत्कृष्ट सम्मिश्रण और बहुत गम्भीर विचार करने पर भी उनका अन्वेषण करना कठिन है और तीव्र से तीव्र बुद्धि परिष्कृत तथा नियमित विचार भी इस समस्या का हल सोचने में असमर्थ हुए हैं।

स्पाईनोज़ा God Intoxicated Spinoza

"If intellect and will do belong to God's eternal essence, each of these attributes must be taken in a sense very different from the common one. For there would have to be a world-wide difference between our intellect and will, and the intellect and will constituting God's essence, nor could they agree in anything except the name; just as the Dog, a constellation, agrees with Dog, an animal that barks".

(Prof. Fullarton's Translation. The Philosophy of Spinoza)

यदि बुद्धि तथा संकल्प ईश्वर के नित्य सारभूत हैं तो इन दोनों धर्मों की सामान्य धर्मों से सर्वथा पृथकता होनी चाहिये क्योंकि हमारी बुद्धि तथा संकल्प का ऐश्वरीय बुद्धि और संकल्प का आकाश पाताल का अन्तर होना चाहिये।

इनमें तो केवल नाममात्र की भी ऐसी समान्ता है जैसे कि एक कुत्ता राशी भौंकने वाले कुत्ते जानवर से मिलती है।

(प्रोफेसर फुलर्टन के अनुवाद से)

लीब्नीज़ Leibniz

"It is this that enables spirits to enter into a kind of fellowship with God, and brings it about that in relation to them he is not only what an inventor is to his majustes, but also what a prince is to his subjects, and indeed, what a father is to his children". (Monad)

यह यही बात है जो कि आत्माओं को परमात्मा का सजातीय बना देती है और यहां तक कि उनके संसर्ग से वह न केवल अपने कर्ता है किन्तु ऐसा हो जाता है जैसे प्रजा के लिये उसका राजकुमार और पुत्रों के लिये पिता।

Locke लाक

"And we can know, therefore, that a supremely powerful, knowing, and intelligent being exists. Otherwise there must have been a time when knowledge did not exist; and in that case, it never could have come into being".

Empisicim–अनुभव जन्य ज्ञानवाद के आचार्य "लाक" यह कहते हैं कि हमारा अनुभव यह कहता है कि असत् से कभी किसी वस्तु का सद्भाव नहीं हो सकता अतएव हम जान सकते हैं कि कोई सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और स्वतन्त्र चेतन सत्ता अवश्य है। यदि ईश्वर की सत्ता स्वीकार न की जाय तो एक समय ऐसा अवश्य मानना पड़ेगा कि उस समय ज्ञान का नाम निशान भी नहीं था। और ऐसा मानने पर ज्ञान या अनुभूति की सत्ता नहीं रह सकती। परन्तु सत्ता है हम अनुभव करते हैं और जब से हैं तब से अनुभव कर रहे हैं इसलिये इस अनुभूति का विषय भी अवश्य अनादि अनन्त होना चाहिये।

बर्क्ले Berkeley

We perceive a continual succession of ideas; some are anew excited, others are changed or totally disappear. There is therefor, some cause of these ideas, where on they depend and which produces and changes them. That this cause can not be any quality of idea or combination of ideas, is clear already. It must, therefore be a substance, but it has been shown that there is no

carporall or material substance, it remains, there for, that the cause of ideas is an incorporall active substance or spirit.

And since our own will is not sequal to the task there must be some other will that produces ideas in us namely God

यह प्रत्यक्ष है कि निरन्तर विचारधारा में कई विचार सद्योजात हैं और अन्यथा परिवर्तित हो जाते हैं या विलुप्त हो जाते हैं। इसलिये इन विचारों का कोई कारण है जिसके आधार पर वह उन्हें पैदा करता है और परिवर्तित करता है। यह कारण जैसे कि पहिले स्पष्ट किया गया है न तो विचार का धर्म है और ना हीं विचारों का संसर्ग। इसका तत्त्व तो आवश्यक है किन्तु यह दर्शाया जा चुका है कि यह तत्त्व न तो शारीरिक है और नहीं द्रव्य पदार्थ अन्त में यह अर्थ होता है कि विचारों का कारण निखयव, उत्साहीधर्म या आत्मा है क्योंकि हमारा संकल्प इस काम के लिये परिशिष्ट नहीं, सो कोई और संकल्प अवश्य हमारे में विचार पैदा करता है। जो करता है वह ईश्वर है।

Aristotal अरिस्टोटल

"God is merely cause the source of movement, the first mover who himself is never moved"

The age of Article

यूरोपीय दर्शन शास्त्र के आदि गुरु और यूनान के प्रसिद्ध फ़िलासफ़र 'अरस्तू' यह कहते हैं कि सृष्टि उत्पत्ति के समय प्रकृति में जो क्रिया हुई उसका वास्तविक और मुख्य कारण ईश्वर है। वही है जिसने प्रकृति में पहले पहल गति दी परन्तु उसको गति देने वाला कोई नहीं क्योंकि ईश्वर स्वतन्त्र है अतएव उसको गति देने का प्रश्न पैदा नहीं हो सकता।

इसके अतिरिक्त काण्ट, शोपन्हार, थौरो, एमर्सन, ब्राउनिंग, वर्ड्सवर्थ तथा अरबी दर्शन शास्त्र के आदिगुरू श्री बूअलीसीना और उद्योतकराचार्य्य, वाचस्पति मिश्र, व्यासराय, माध्वाचार्य्य, ऋषि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, ज्ञानी ज्ञानेश्वर, कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, लोकमान्यतिलक, आदि आदि बहुत से उच्च कोटि के विद्वानों और कवियों ने भी ईश्वर के विषय में अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति दिखाई है हमें शोक है ग्रन्थ विस्तारभय से उपरोक्त महानुभावों की सम्मतियें इस निबन्ध में उद्धृत नहीं की जा सकीं। यह निबन्ध युक्ति विषयक प्रधानता को उद्देश्य में रख कर लिखा गया है और प्रधान प्रधान उपयोगी युक्तियें प्रायः दी भी जाचुकी हैं अतः अन्त में यही प्रार्थना है कि सार को ध्यान

लगा कर ग्रहण करें और ईश्वर विश्वासी बन कर अपना लोक परलोक सुधारें क्योंकि—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृता ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥

यजुर्वेद ।

जो लोग नास्तिक बनकर आत्महनन करते हैं वह अज्ञान के घोर अन्धकार में पड़कर कष्टातिकष्ट उठाते और निकृष्ट योनियों में भ्रमण करते हैं ।

अन्त में श्री उदयनाचार्य के शब्दों में दयालु परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि—

इत्येवं श्रुति नीति संप्लवजलैः भूयोभिराक्षालिते,
येषांन्ना स्पदमदधासि हृदये ते शैलसाराशयाः ।
किन्तु प्रस्तुतविप्रतीपविधयोऽप्युच्चैर्भवच्चिन्तकाः,
काले कारुणिक! त्वयैव कृपया ते भावनीयाः नराः

हमने अपनी शक्ति अनुसार वेद शास्त्र और सद्युक्ति प्रयुक्ति के प्रमाणों से ईश्वर सिद्धि में मनन पूर्वक विचार किया है और जिज्ञासुओं की तृप्ति के लिये भरसक प्रयत्न

भगवन् ! जिन लोगों के हृदय में आपके प्रति श्रद्धा भक्ति का उदय नहीं होता वह लोग निश्चय से भाग्य हीन हैं, उनके हृदय लोहे तथा वज्र के बने हुए हैं, जो इतना पुष्कल प्रमाण देने पर भी द्रवीभूत नहीं होते । हे जगदीश्वर ! ऐसे भाग्यहीन लोगों का आप ही समय आने पर कृपा कर नास्तिकता से उद्धार कर सकते हैं हमारे में ऐसी शक्ति कहां कि बिना आपकी सहायता के उनके कठोर हृदयों को पिघला कर ईश्वर परायण कर सकें ।

ब्रह्म कृपा हि केवलम् ।

समाप्त

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः